राष्ट्रीय-गान

जन-गण-मन अधिनायक जय हे,
भारत - भाग्य - विधाता
पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा,
द्राविड़, उत्कल, वंग,
विन्ध्य, हिमाचल, यमुना, गंगा,
उच्छल जलधि - तरंग।
तव शुभ - नामे जागे
तव शुभ आशिष मांगे,
गाहे तव जय-गाथा
जन-गण मंगलदायक जय हे,
भारत - भाग्य - विधाता
जय हे, जय हे, जय हे,
जय जय जय, जय हे !!

[विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा रचित]

श्री सीताराम जी

अन्वेषण नं० १

[श्री रामनरेश त्रिपाठी]

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ॥१॥

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में ॥२॥

मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ॥३॥

बन कर किसी के आँसू मेरे लिये बहा तू।
मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में ॥४॥

बाजे बजा-बजा कर मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में ॥५॥

मैं था विरक्त तुझसे जग की अनीतिता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में ॥६॥

तू बीच में खड़ा था बेबस गिरे हुओं के।
मैं स्वर्ग देखता था, झुकता कहाँ चरण में ॥७॥

तूने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था मैं व्यस्त था कथन में ॥८॥

हरिचन्द्र और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में ॥९॥

प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था मंसूर की रटन में ॥१०॥

कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस कदर है।
हैरान होके भगवन् ! आया हूँ मैं शरण में ॥११॥

तू रूप है किरण में, सौंदर्य सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में ॥१२॥

तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुसलिमोंमें।
विश्वास क्रिश्चनों में; तू सत्य है सुजन में।.१३॥

हे दीनबन्धु! ऐसे प्रतिमा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में ॥१४॥

कठिनाइयों दुखों का इतिहास ही सुयश है।
मुझको समर्थ कर तू, बस कष्ट के सहन में ॥१५॥

दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में ॥१६॥

अभ्यास

१—इस कविता के अनुसार ईश्वर के दर्शन कहाँ हो सकते हैं ?
२—पद्य सं० १४, १५ और १६ के भावार्थ लिखो।
३—'व्यस्त था कथन में, का क्या अभिप्राय समझते हो ?
४—इनके संक्षिप्त परिचय लिखो—
हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रह्लाद।

आत्मनिर्भरता

[आचार्य रामचन्द्र शुक्ल]

नम्रता ही स्वतंत्रता की धात्री और जननी है लोग भ्रमवश अहंकार-वृत्ति को उसकी जननी समझ बैठते हैं, जो उसका मौलिक शत्रु और सर्वनाश करनेवाली है। चाहे वह सम्बन्ध ठीक हो या न हो, पर इस बात को तो सब लोग मानते हैं कि आत्म-संस्कार के लिये थोड़ी-बहुत मानसिक स्वतंत्रता परम आवश्यक है—चाहे उसमें अभिमान और नम्रता दोनों का मेल हो या वह केवल नम्रता से ही उत्पन्न हो।

यह बात तो निश्चित है कि जो मनुष्य मर्यादा-पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है उसके लिये आत्मनिर्भरता अनिवार्य है जिससे अपने पैरों के बल खड़ा होना आता है।

युवा पुरुष को यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि वह बहुत कम बातें जानता है, अपने ही आदर्श से वह बहुत नीचे है और

उनकी आकांक्षाएँ उनकी योग्यता से कहीं बढ़ी-चढ़ी है। उसे इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वह अपने से बड़ों का सम्मान करे, छोटों और बराबरवालों से कोमलता का व्यवहार करे। ये बातें आत्म-मर्यादा के लिये आवश्यक है।

यह सारा संसार, जो कुछ हम हैं और जो कुछ हमारा है-हमारा शरीर, हमारी आत्मा, हमारे कर्म, हमारे भोजन, हमारे घर की और बाहर की दशाएँ, हमारे बहुत-से अवगुण और थोड़े-से गुण—सब इसी बात की आवश्यकता प्रकट करते हैं कि हमें अपनी आत्मा को नम्र रखना चाहिये।

नम्रता से अभिप्राय दब्बूपन से नहीं हैं, जिसके कारण बात-बात में मनुष्य दूसरों का मुँह ताकता रहता है, जिससे उसका संकल्प क्षीण और उसकी प्रतिज्ञा मन्द हो जाती है, जिसके कारण वह आगे बढ़ने के समय भी पीछे रहता है, और अवसर पड़ने पर किसी बात का निर्णय नहीं कर पाता।

मनुष्य का बेड़ा अपने ही हाथों में है, उसे चाहे वह जिधर घुमावे। सच्ची आत्मा वही है जो प्रत्येक दशा में, प्रत्येक स्थिति के बीच, अपनी राह आप निकालती है।

अब तुम्हें क्या करना चाहिये, इसका ठीक-ठीक उत्तर तुम्हीं को देना होगा, दूसरा कोई नहीं दे सकता। कैसा भी

विश्वास-पात्र मित्र हो, तुम्हारे इस काम को वह अपने ऊपर नहीं ले सकता।

हम अनुभवी बातों को आदर के साथ सुनें बुद्धिमानों की सलाह को कृतज्ञतापूर्वक मानें, पर इस बात को निश्चित समझ कर कि हमारे ही कामों से हमारी रक्षा और उन्नति अथवा अवनति होगी। हमें अपने विचार और निर्णय की स्वतंत्रता को दृढ़तापूर्वक बनाये-रखना चाहिये।

जिस युवा पुरुष की दृष्टि सदा नीचे रहती है, उसका सिर कभी ऊपर न होगा। नीची दृष्टि से यद्यपि वह रास्ते पर रहेगा तथापि यह न देख सकेगा कि वह रास्ता उसे कहाँ ले जा रहा है।

चित्त की स्वतंत्रता का मतलब चेष्टा की या कठोरता या प्रकृति की उग्रता नहीं है। अपने व्यवहार में कोमल रहो। अपने उद्देश्यों को उच्च रक्खो! इस प्रकार, उच्च और उच्चाशय दोनों बनो। अपने मन को कभी निर्जीव न बनाओ। जितना ही मनुष्य अपना लक्ष्य ऊपर रखता है उतना ही उसका तीर ऊपर जाता है।

संसार में ऐसे-ऐसे दृढ़चित्त पुरुष हो गये हैं जिन्होंने मरते दम तक सत्य की टेक नहीं छोड़ी, अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई

काम नहीं किया। राजा हरिश्चन्द्र के ऊपर कितनी ही विपत्तियाँ आयीं पर उन्होंने सत्यव्रत नहीं छोड़ा। उनकी प्रतिज्ञा यही रही—

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ हरिश्चन्द्र को, टरै न सत्य विचार॥

महाराणा प्रताप सिंह जंगल-जंगल मारे-मारे फिरते थे, अपनी स्त्री और बच्चों को भूख से पीड़ित देखते थे, पर उन्होंने उन लोगों की बातें न मानी जो उन्हें अधीनता-पूर्वक सन्धि करने की सम्मति देते थे। क्योंकि वे जानते थे कि अपनी मर्यादा की चिन्ता जितनी अपने को हो सकती है, उतनी दूसरे को न होगी।

हकीकतराय नामक वीर बालक को देखो, उसने जल्लाद की चमकती तलवार गर्दन पर देखकर भी न्यायाधीश के सामने धर्म-परित्याग करना स्वीकार नहीं किया। सिक्ख गुरु गोविन्द सिंह के दोनों लड़के जीते-जी दीवार में चुन दिये गये, पर वे अन्त तक विधर्मी होने के नाम पर 'नहीं-नहीं' करते ही रहे।

एक बार एक रोमन राजनीतिज्ञ बलवाइयों के हाथ में पड़ गया। बलवाइयों ने उससे व्यंगपूर्वक कहा—"अब तेरा किला कहाँ है ?" उसने हृदय पर हाथ रखकर उत्तर दिया—"यहाँ।" वास्तव में ज्ञान के जिज्ञासुओं का गढ़ दृढ़ हृदय ही है।

मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि जो युवा पुरुष सब बातों में दूसरों का सहारा चाहते हैं, जो सदा एक-न-एक नया अगुआ ढूँढ़ा करते हैं और उसके अनुयायी बना करते हैं, वे आत्म-संस्कार के कार्य में उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें स्वयं विचार करना, अपनी सम्मति आप स्थिर करना, दूसरों की उचित बातों का मूल्य समझते हुए भी उसका अन्धभक्त न होना—सीखना चाहिए।

तुलसीदास जी को लोक में जो इतनी सर्वप्रियता और कीर्ति प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन जो इतना महत्वमय और शान्ति-मय रहा, सब इसी मानसिक स्वतन्त्रता, निर्द्वन्द्वता और आत्म-निर्भरता के कारण। वहीं उनके समकालीन केशवदास को देखो, जो जीवन भर विलासी राजाओं के हाथ की कठपुतली बने रहे जिन्होंने आत्मस्वातंत्र्य की ओर कम ध्यान दिया और अन्त में स्वयं अपनी बुरी गति की।

एक इतिहासकार कहता है—"प्रत्येक मनुष्य का भाग्य उसके हाथ में है—प्रत्येक मनुष्य अपना जीवन निर्वाह श्रेष्ठ रीति से कर सकता है।"

इसे चाहे स्वतंत्रता कहो, चाहे आत्म-निर्भरता कहो, चाहे स्वावलम्बन कहो, जो कुछ कहो, यही वह भाव है जिसमें मनुष्य और दास में भेद जान पड़ता है। इसी भाव की प्रेरणा से राम,

लक्ष्मण ने घर से निकलकर बड़े-बड़े पराक्रमी वीरों पर विजय प्राप्त की; इसी की प्रेरणा से हनुमान ने अकेले सीता की खोज की, इसी की उत्तेजना से कोलम्बस ने अमेरिका महाद्वीप को ढूँढ़ निकाला।

चित्त की वृत्ति के बल पर सूरदास ने अकबर के बुलाने पर फतेहपुर सीकरी जाने से इनकार किया था। कहा था—"मोको कहा सीकरी सा काम ?"

इस चित्त-वृत्ति के बल से मनुष्य इसलिये परिश्रम के साथ दिन काटता और दरिद्रता के साथ दुःख झेलता है जिससे उसे ज्ञान के अमित भण्डार में से कुछ मिल जाय।

इसी चित्त-वृत्ति के प्रभाव से हम प्रलोभनों का निवारण करके उन्हें पद-दलित करते हैं, कुमन्त्रणाओं का तिरस्कार करते हैं, शुद्ध चरित्र के लोगों से प्रेम और उनकी रक्षा करते हैं।

इसी चित्त-वृत्ति के प्रभाव से युवा पुरुष कार्यालयों में शान्त और सच्चे रह सकते हैं, और उनलोगों की बातों में नहीं आ सकते, जो आप अपनी मर्यादा खोकर दूसरों को भी अपने साथ बुराई के गढ्ढे में गिराना चाहते हैं।

इसी चित्त-वृत्ति के प्रताप से बड़े-बड़े लोग ऐसे समयों में भी, जब उनके और साथियों ने उनका साथ छोड़ दिया है—अपने महत्कार्यों में अग्रसर होते गये हैं, और यह सिद्ध कर देने

में समर्थ हुए हैं कि निपुण, उत्साही और परिश्रमी पुरुषों के लिये कोई अड़चन नहीं जो उन्हें आगे बढ़ने से रोके।

इसी चित्त-वृत्ति की दृढ़ता के सहारे दरिद्र लोग दरिद्रता से और अपढ़ लोग अज्ञता से निकलकर उन्नत हुए हैं, तथा उद्योगी और अध्यवसायी लोगों ने अपनी समृद्धि का मार्ग निकाला है। इसीके अवलम्बन से पुरुषसिंह को यह कहने की क्षमता हुई है कि 'मैं राह ढूँढूँगा या राह निकालूँगा।'

यही चित्त-वृत्ति थी, जिसकी उत्तेजना से शिवाजी ने थोड़े से वीर मरहठे सिपाहियों को लेकर औरंगजेब की बड़ी भारी सेना पर छापा मारा और उसे तितर-बितर कर दिया।

यही चित्त-वृत्ति थी जिनके सहारे एकलव्य बिना किसी गुरु या संगी, साथी के, जंगल के बीच, निशाने पर लगातार तीर चलाता रहा और अन्त में एक बड़ा धनुर्धर हो गया।

यही चित्त-वृत्ति है जो मनुष्य को सामान्य जनों से उच्च बनाती है, उसके जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण करती है तथा उत्तम-संस्कार के ग्रहण करने योग्य बनाती है।

जिस मनुष्य की बुद्धि और चतुराई उसके दृढ़ हृदय के ही आश्रम पर स्थिर रहती है वह जीवन और कर्मक्षेत्र में स्वयं भी श्रेष्ठ रहता है तथा दूसरों को भी श्रेष्ठ बनाता है!

प्रसिद्ध उपन्यासकार स्काट एक बार ऋण के बोझ से बिलकुल दब गया। उसके मित्रों ने उसकी सहायता करनी चाही, पर उसने यह बात स्वीकार न की। उसने स्वयं अपनी ही प्रतिज्ञा का सहारा लेकर, थोड़े ही दिनों के बीच अनेक उपन्यास लिखकर लाखों रुपये का ऋण अपने सिर से उतार दिया।

अभ्यास

१—इस पाठ से चार सामाजिक पद चुनो।

२—महाराणा प्रताप ने संधि के संवाद को क्यों स्वीकृत नहीं किया?

३—हृदय मनुष्य का किला कैसे हो सकता है?

४—केशवदास की बुरी गति क्यों हुई?

———

अमावस्या की रात्रि

[श्री प्रेमचन्द]

(१)

दीपावली की संध्या थी। श्रीनगर के घूरों और खँडहरों के भी भाग्य चमक उठे थे। कस्बे के लड़के-लड़कियाँ श्वेत थालियों में दीपक लिये मन्दिर की ओर जा रही थीं। दीपों से अधिक उनके मुखारविन्द प्रकाशमान थे। प्रत्येक गृह रोशनी से जगमगा रहा था। केवल पंडित देवदत्त का सतधरा भवन अन्धकार से कालीघाट की भाँति गंभीर और भयंकर रूप में खड़ा था। गंभीर इसलिए कि उसे अपने उन्नति के दिन भूले न थे। भयंकर इसलिये कि वह जगमगाहट मानो उसे चिढ़ा रही थी। एक समय वह था जब कि ईर्ष्या भी उसे देखकर हाथ मलती थी, और एक समय यह है कि घृणा भी उसपर कटाक्ष करती है। द्वार पर द्वारपाल की जगह अब मंदार और अरंड वृक्ष खड़े

थे। दीवानखाने में एक मतंग साँढ़ अकड़ता था। ऊपर के घरों में जहाँ मनोहर संगीत होता रहता था, वहाँ आज जंगली कबूतरों के मधुर शब्द सुनाई देते थे। किसी विधवा स्त्री के हृदय की भाँति उसकी दीवारें विदीर्ण हो रही थीं। पर समय को हम कुछ नहीं कह सकते। समय की निन्दा व्यर्थ और भूल है, यह मूर्खता और अदूरदर्शिता का फल है।

अमावस्या की रात्रि थी। प्रकाश से पराजित होकर मानो अन्धकार ने उसी विशाल भवन में शरण ली थी। पंडित देवदत्त अपने अन्धकारवाले कमरे में मौन, परन्तु चिन्तानिमग्न थे। आज एक महिने से उनकी पत्नी गिरिजा की जिन्दगी को निर्दय काल ने खिलवाड़ बना लिया था। पंडितजी दरिद्रता और दुःख को भुगतने के लिये तैयार थे। भाग्य का भरोसा उन्हें धैर्य बँधाता था। किंतु, यह नय विपत्ति सहन-शक्ति के बाहर थी। बेचारे दिन-के-दिन गिरिजा के सिरहाने बैठकर उसके मुर्झाए हुए मुख को देखकर कुढ़ते और रोते थे। गिरिजा जब अपने जीवन से निराश होकर रोती, तो वे उसे समझाते—'गिरिजा' रोओ मत, तुम शीघ्र अच्छी हो जाओगी।

पंडित देवदत्त के पूर्वजों का कारोबार बहुत विस्तृत था। वे लेन-देन किया करते थे। अधिकतर इनके व्यवहार बड़े-बड़े चकलेदारों और रजवाड़ों के साथ थे। उस समय ईमान इतना

सस्ता नहीं बिकता था। सादे पत्रों पर लाखों की बातें हो जाती थीं। मगर सन् ५७ ई० के बलवे ने कितनी ही रियासतों और राज्यों को मिटा दिया और उनके साथ तिबारियों का यह अन्नधन-पूर्ण परिवार भी मिट्टी में मिल गया। खज़ाना लुट गया, वही-खाते पनसारियों के काम आये। जब कुछ शान्ति हुई, रियासतें कुछ सँभलीं तो समय पलट चुका था। वचन लेख के आधीन हो रहा था तथा लेख भी सादे और रंगीन का भेद होने लगा था। जब देवदत्त ने होश सँभाले तब उनके पास खँडहर के अतिरिक्त कोई सम्पत्ति न थी। अब निर्वाह के लिये कोई उपाय न था। कृषि में परिश्रम और कष्ट था। वाणिज्य के लिये बुद्धि और धन की आवश्यकता थी। विद्या भी ऐसी नहीं कि कहीं नौकरी करते। परिवार की प्रतिष्ठा दान लेने में बाधक थी। अस्तु, साल में दो-तीन बार अपने व्यवहारियों के घर बिना बुलाये पाहुनों की भाँति जाते और जो कुछ बिदाई या मार्ग-व्यय पाते उसी पर गुजारा करते।

पैतृक-प्रतिष्ठा का चिह्न यदि कुछ शेष था तो वह पुरानी चिट्ठी-पत्रियों का ढेर तथा हुण्डियों का पुलिन्दा जिनकी स्याही भी उनके मंद भाग्य की भाँति फीकी पड़ गयी थी। पंडित देवदत्त उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय समझते थे। द्वितीया के दिन जब घर-घर लक्ष्मी की पूजा होती है, पंडितजी ठाट-बाट से पुलिन्दों

की पूजा करते। लक्ष्मी न सही, लक्ष्मी के स्मारक चिह्न-ही सही! दूज का दिन पंडित जी की प्रतिष्ठा का श्राद्ध-दिन था। इसे चाहे विडम्बना कहो चाहे मूर्खता, परन्तु श्रीमान् पंडित महाशय को उन पत्रों पर बड़ा अभिमान था। जब गाँवों में कोई विवाद छिड़ जाता, तो यह सड़े-गले कागज की सेना ही बहुत काम कर जाती और प्रतिवादी शत्रु को हार माननी पड़ती। यदि सत्तर पीढ़ियों से शस्त्र की सूरत न देखने पर भी लोग क्षत्रिय होने का अभिमान करते हैं तो पंडित देवदत्त का उन लेखों पर अभिमान करना अनुचित नहीं कहा जा सकता, जिसमें सत्तर लाख रुपयों की रकम छिपी हुई थी।

(२)

वही अमावस्या की रात्रि थी। किन्तु, दीपमालिका अपनी अल्प जीवनी समाप्त कर चुकी थी। चारों ओर जुआरियों के लिये यह शकुन की रात्रि थी, क्योंकि आज की हार सालभर की हार होती है। लक्ष्मी के आगमन की धूम थी। कौड़ियों पर अशर्फियाँ लुट रही थीं। भट्ठियों में शराब के बदले पानी बिक रहा था। पंडित देवदत्त के अतिरिक्त कस्बे में कोई ऐसा मनुष्य नहीं था जो दूसरों की कमाई समेटने की धुन में न हो। आज भोर ही से गिरिजा की अवस्था शोचनीय थी। विषम ज्वर एक-एक क्षण में मूर्छित कर रहा था। एकाएक उसने

चौंककर आँखें खोलीं और अत्यन्त क्षीण स्वर में कहा—"आज तो दीवाली है।"

देवदत्त ऐसा निरास हो रहा था कि गिरिजा को चैतन्य देखकर भी उसे आनन्द नहीं हुआ। बोला—"हाँ, आज दीवाली है।"

गिरजा ने आँसू भरी दृष्टि से इधर-उधर देखकर कहा—"हमारे घर में क्या दीप न जलेंगे ?"

देवदत्त फूट-फूट कर रोने लगा। गिरजा ने फिर उसी स्वर में कहा—"देखो, आज वर्ष का दिन अन्धेरा रह गया। मुझे उठा दो, मैं भी अपने घर में दिये जलाऊँगी।"

ये बातें देवदत्त के हृदय में चुभ जाती थी। मनुष्य की अन्तिम घड़ी लालसाओं और भावनाओं में व्यतीत होती हैं।

(३)

इस नगर में लाला शंकर दास अच्छे प्रसिद्ध वैद्य थे। वे अपने प्राण-संजीवन औषधालय में दवाओं के स्थान पर छापने के प्रेस रक्खे हुए थे। दवाइयाँ कम बनती थी, किंतु इश्तहार अधिक प्रकाशित होते थे।

वे कहा करते थे कि बीमारी केवल रईसों का ढकोसला है। अर्थशास्त्र के मतानुसार इस विशाल पदार्थ से जितना अधिक

सम्भव हो, टैक्स लेना चाहिये। यदि कोई निर्धन है तो हो। यदि कोई मरता है तो मरे। उसे क्या अधिकार है कि वह बीमार पड़े और मुफ्त में दवा करावे! भारतवर्ष की यह दशा अधिकतर मुफ्त दवा कराने से हुई है। इसने मनुष्य को असावधान और बलहीन बना दिया है। देवदत्त महीने भर से नित्य उनके निकट दवाई लेने आता था, परन्तु वैद्यजी कभी भी उसकी ओर इतना ध्यान नहीं देते थे कि वह अपनी शोचनीय दशा प्रकट कर सके। वैद्यजी के हृदय के कोमल भाग तक पहुँचने के लिये देवदत्त ने बहुत कुछ हाथ-पैर चलाये। वह आँखों में आँसू भरे आता, किन्तु वैद्यजी का हृदय ठोस था, उसमें कोमल भाग था ही नहीं।

वही अमावस्या की डरावनी रात थी। गगन-मंडल में तारे आधी रात के बीतने पर और अधिक प्रकाशित हो रहे थे— मानो श्रीनगर की बुझी हुई दीपमाला पर कटाक्षयुत आनन्द के साथ मुस्कुरा रहे थे। देवदत्त एक बेचैनी की दशा में गिरिजा के सिरहाने से उठे और वैद्यजी के मकान की ओर चले। वे जानते थे कि लालाजी बिना फीस लिये कदापि न आयेंगे, किंतु हताश होने पर भी आशा पीछा नहीं छोड़ती। देवदत्त कदम आगे बढ़ाते चले जाते थे।

वैद्यजी उस समय अपने 'रामबाण विन्दु' का विज्ञापन लिखने में व्यस्त थे कि इतने में देवदत्त ने बाहर से आवाज दी। वैद्यजी बहुत खुश हुए। रात के समय उनकी फीस दुगुनी थी। लालटेन लिये बाहर निकले तो देवदत्त रोता हुआ उनके पैरों से लिपट गया और बोला—"वैद्यजी, इस समय मुझपर दया कीजिये। गिरिजा अब घड़ी-भर की पाहुनी है; अब आप ही उसे बचा सकते हैं। यों तो मेरे भाग्य में जो लिखा है, वही होगा; किन्तु इस समय तनिक चलकर आप देख लें तो मेरे दिल की दाह मिट जायगी। मुझे धैर्य हो जायगा कि उसके लिये मुझसे जो कुछ हो सकता था, मैंने किया। परमात्मा जानता है कि मैं इस योग्य नहीं हूँ कि आपकी सेवा कर सकूँ, किन्तु जबतक जिऊँगा आपका यश गाऊँगा, आपके इशारों का गुलाम बना रहूँगा।

वैद्यजी को पहले कुछ तरस आया, किन्तु वह जुगनू की चमक थी जो शीघ्र स्वार्थ के विशाल अन्धकार में लीन हो गई।

पंडितजी निराश के अथाह समुद्र में गोते खा रहे थे, शोक में इस योग्य भी नहीं थे कि प्राणों से भी अधिक प्यारी की दवा-दारू कर सकें। क्या करें? इस निष्ठुर वैद्य

को यहाँ कैसे लावें ? जालिम, मैं सारी उमर गुलामी करता ! तेरे इश्तहार छापता ! तेरी दवाइयाँ कूटता ! आज पंडितजी को यह ज्ञान हुआ कि सत्तर लाख की चिट्ठी-पत्रियाँ इतनी कौड़ियों के मोल की भी नहीं। पैतृक-प्रतिष्ठा का अहंकार अब आँखों से दूर हो गया। उन्होंने उस मखमली को सन्दूक से बाहर निकाला और उन चिट्ठी-पत्रियों को, जो बाप-दादे की कमाई की शेषांश थीं और प्रतिष्ठा की भाँति जिनकी रक्षा की जाती थी, वे एक-एक दीया को अर्पण करने लगे। इतने में किसी ने बाहर से पंडितजी को पुकारा। उन्होंने चौंक कर सिर उठाया। वे नींद से जागे; अँधेरे में टटोलते हुए दरवाजे तक आये तो देखा कि कई आदमी हाथ में मशाल लिए हुए खड़े हैं और हाथी अपने सूँड़ से एण्ड के वृक्षों को उखाड़ रहा है जो द्वारपालों की भाँति खड़े थे। हाथी पर एक सुन्दर युवक बैठा हुआ है, जिसके सिर पर केसरिया रंग का रेशमी पाग है। माथे पर अर्द्धचन्द्राकार चन्दन, भाले की तरह तनी हुई नोकदार मूँछें, मुखारविन्द से प्रभाव और प्रकाश टपकता हुआ; कोई शानदार मालूम पड़ता है। पंडितजी को देखते ही उसने रकाब पर पैर रक्खा और नीचे उतर कर उनकी वन्दना की। उसके इस विनीत भाव से लज्जित होकर पंडितजी बोले—"आपका आगमन कहाँ से हुआ ?"

युवक ने बड़े नम्र शब्दों में जवाब दिया—उसके चेहरे से भलमनसाहत बरसती थी—"मैं आपका पुराना सेवक हूँ। दास का घर राजनगर में है। मैं वहाँ का जागीरदार हूँ। मेरे पूर्वजों पर आपके पूर्वजों ने बड़े अनुग्रह किये हैं। मेरी इस समय जो कुछ प्रतिष्ठा और सम्पदा है, वह आपकी पूर्वजों की कृपा और दया का परिणाम है। मैंने अपने अनेक स्वजनों से आपका नाम सुना था और मुझे बहुत दिनों से आपके दर्शनों की आकांक्षा थी। आज वह सुअवसर भी मिल गया। अब मेरा जन्म भी सफल हुआ।"

पंडित देवदत्त की आँखों में आँसू भर आये। पैतृक-प्रतिष्ठा का अभिमान उनके हृदय का कोमल भाग था। वह दीनता, जो उनके मुख पर छाई हुई थी, थोड़ी देर के लिये विदा हो गई। वे गम्भीर भाव धारण कर बोले—"यह आपका अनुग्रह है, जो ऐसा कहते हैं। नहीं तो मुझ-जैसा कुपूत में तो इतनी भी योग्यता नहीं है, जो अपने को उन लोगों की सन्तति कह सकूँ। इतने में नौकर ने आँगन में फर्श बिछा दिया। दोनों आदमी उस पर बैठे और बातें होने लगी—वे बातें जिनका प्रत्येक शब्द पंडितजी के मुख को इस तरह प्रफुल्लित कर रहा था, जिस तरह प्रातःकाल की वायु फूलों को खिला देती है।

पंडितजी के पितामह ने नवयुवक ठाकुर के पितामह को पचीस सहस्र रुपये कर्ज दिये थे। ठाकुर अब गया में जाकर अपने पूर्वजों की श्राद्ध करना चाहता था, इसलिये जरूरी था कि उसके जिम्मे जो कुछ ऋण हो, उसकी एक-एक कौड़ी चुका दी जाय। ठाकुर को पुराने बही-खाता में यह ऋण दिखाई दिया। पच्चीस के पचहत्तर हजार हो चुके थे। वही ऋण चुका देने के लिये ठाकुर २०० कोस से आया था। धर्म वह शक्ति है, जो अन्तःकरण में ओजस्वी विचारों को पैदा करती है। हाँ, इस विचार को कार्य में लगाने के लिये एक पवित्र और बलवान् आत्मा की आवश्यकता है। अन्त में ठाकुर ने पूछा—"आपके पास तो वे चिट्ठियाँ होंगी?"

देवदत्त का दिल बैठ गया। वे संभलकर बोले—"सम्भवतः हों। कुछ कह नहीं सकते।" ठाकुर ने लापरवाही से कहा—"ढूढ़िये, यदि मिल जायँ गो हम लेते जायँगे।"

पंडित देवदत्त उठे। लेकिन हृदय ढंढा हो रहा था। शंका होने लगी कि कहीं भाग्य हरे बाग न दिखा रहा हो। कौन जाने, यह पुरजा जलकर राख हो गया या नहीं। यह भी तो नहीं मालूम कि वह पहले था वा नहीं। यदि न मिला तो रुपये कौन देता है। शोक! दूध का प्याला सामने आकर हाथ से छुटा जाता है। हे भगवान्। वह पत्री मिल जाय।

हमने अनेक कष्ट पाये हैं। अब इस पर दया करो। इस प्रकार निराशा की दशा में देवदत्त भीतर गये और दीया के टिमटिमाते हुए प्रकाश में बचे हुए पत्रों को उलट-पलट कर देखने लगे।

उछल पड़े और उमंग में भरे हुए पागलों की भाँति आनन्द की अवस्था में दो-तीन बार कूदे। तब दौड़कर गिरिजा को गले से लगा लिया और बोले—"प्यारी, यदि ईश्वर ने चाहा तो तू अब बच जायगी। इस उन्मत्तता में उन्हें एकदम यह नहीं जान पड़ता कि गिरिजा अब वहाँ नहीं है. केवल उसकी लोथ है।

देवदत्त ने पत्री को उठा लिया और द्वार पर तेजी से आये मानों पाँव में पर लग गये हैं। परन्तु यहाँ उन्होंने अपने को रोका और हृदय में आनन्द की उमड़ी हुई तरंग को रोककर कहा—"यह लीजिये, यह पत्री मिल गयी। संयोग की बात है, नहीं तो सत्तर लाख के कागज दीमकों के आहार बन गये।"

आकस्मिक सफलता में कभी-कभी सन्देह बाधा डालता है। जब ठाकुर ने उस पत्री को लेने को हाथ बढ़ाया तो देवदत्त को सन्देह हुआ, कहीं वह उसे फाड़कर फेंक न दे। यद्यपि यह संदेह निरर्थक था, तथापि मनुष्य कमजोरियों का पुतला है। ठाकुर ने उनके मन का भाव ताड़ लिया। उसने बेपरवाही से पत्री को लिया और मशाल के प्रकाश में देखकर कहा—

"अब मुझे पूर्ण विश्वास हुआ। यह लीजिये, आपका रुपया आपके समक्ष है, आशीर्वाद दीजिये कि मेरे पूर्वजों को मुक्ति हो जाय।"

यह कह कर उसने अपने कमरे से एक थैला निकाला और उसमें से एक-एक हजार के पचहत्तर नोट निकाल देवदत्त को दे दिये। पंडितजी का हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था। नाड़ी तीव्र गति से कूद रही थी। उन्होंने चारों ओर चौकन्नी दृष्टि से देखा कि कहीं कोई दूसरा तो नहीं खड़ा है और तनिक काँपते हुए हाथों से नोट को ले लिया।

(६)

पंडित देवदत्त ठाकुर को विदा करके घर में चले। उस समय उनका हृदय उदारता के निर्मल प्रकाश से प्रकाशित हो चुका था। गिरिजा के लिये कपड़े और गहने के विचार ठीक हो गये। अन्तःपुर में पहुँचते ही उन्होंने शालीग्राम के सम्मुख मनसा-वाचा-कर्मणा सिर झुकाया और तब चिट्ठी-पत्रियों को समेट कर उसी मखमली थैली में रख दिया। किन्तु, अब उनका यह विचार नहीं था कि सम्भवतः उस मुर्दों में भी कोई जीवित हो उठे। वरन् जीविका से निश्चित हो। अब वे धैर्य और प्रतिष्ठा पर अभिमान कर सकते थे। उस समय वे पैतृक-उत्साह के नशे में मस्त थे। बस, अब मुझे जिन्दगी में अधिक

सन्देह की जरूरत नहीं। ईश्वर ने मुझे इतना दे दिया है कि इसमें मेरी और गिरिजा की जिन्दगी आनन्द से कट जायगी उन्हें क्या खबर थी की गिरिजा की जिन्दगी पहले कट चुकी है। उनके दिल में यह विचार गुदगुदा रहा था कि जिस समय गिरिजा इस आनन्द समाचार को सुनेगी, उस समय अवश्य उठ बैठेगी। चिन्ता और कष्ट ही ने उसकी ऐसी दुर्गति बना दी है जिसे भर पेट कभी रोटी नसीब न हुई, जो कभी नैराश्य, धैर्य और निर्धनता के हृदय विदारक बन्धन से मुक्त न हुई, उसकी दशा इसके सिवाय और हो ही क्या सकती है? यह सोचते हुए गिरिजा के पास गये और उसे आहिस्ता से हिलाकर बोले—"गिरिजा, आँखें खोलो। देखो, ईश्वर ने तुम्हारी विनती सुन ली और हमारे ऊपर दया की। कैसी तबियत है?"

किन्तु, जब गिरिजा तनिक भी न झिलकी, तब उन्होंने चादर उठा दी और उसके मुख की ओर देखा। हृदय से एक करुणोत्पादक ठंढी आह निकली। वे वहीं सर थाम कर बैठ गये। आँखों में शोणित की बूँदे टपक पड़ीं। आह! क्या वह सम्पदा इतने महँगे मूल्य पर मिली है—परमात्मा के दरबार से मुझे इस प्यारी जान का मूल्य दिया गया है? ईश्वर तुम खूब न्याय करते हो? मुझे गिरिजा की आवश्यकता है, रुपयों की आवश्यकता नहीं! यह सौदा बड़ा महँगा है?

अमावस्या की अँधेरी रात गिरिजा के अन्धकारमय जीवन की भाँति समाप्त हो चुकी थी। खेतों में हल चलानेवाले किसान ऊँचे और सुहावने स्वर में गा रहे थे। सर्दी से काँपते हुए बच्चे सूर्य देवता से बाहर निकलने की प्रार्थना कर रहे थे। पनघट पर गाँव की स्त्रियाँ जमा हो गई थीं। पानी भरने के लिये नहीं, केवल हँसने के लिये। कोई-कोई घड़े को कुएँ में डाले अपनी पोपली सास की नकल कर रही थी। कोई खम्भे में चिपटी हुई अपनी सहेली से मुस्कुरा कर बड़े प्रेम से बात कर रही थी। बूढ़ी स्त्रियाँ रोते हुए पोते को गोद में लिये अपनी बहुओं को कोस रही थी कि घंटे भर हुए अब तक कुएँ से नहीं लौटी। किंतु राजवैद्य लाला शंकर दास अभी तक मीठी नींद ले रहे थे। खाँसते हुए बच्चे और कराहते हुए बूढ़े उनके औषधालय के द्वार पर जमा हो चले थे।

इस भीड़-भम्भड़ से कुछ दूर हटकर दो-तीन सुन्दर किन्तु मुर्झाये हुए नवयुवक टहल रहे थे और वैद्यजी से एकान्त में कुछ बातें किया चाहते थे। इतने में पंडित जी नंगे सर, नंगे बदन, आँखें लाल, डरावनी सूरत, कागज का एक पुलिन्दा लिये दौड़ते हुए आये और औषधालय के द्वार पर इतने जोर से हाँक लगाने लगे कि वैद्यजी चौंक पड़े और कहार को पुकारकर

बोले कि दरवाजा खोल दे। ये महात्मा बड़ी रात गये, किसी बिरादरी की पंचायत से लौटे थे, उन्हें दीर्घ निद्रा का रोग था, जो वैद्यजी के लगातार और भीषण फटकार की औषधियों से भी कम न होता था। आप ऐंठते उठे और किवाड़ खोलकर हुक्का-चिलम की चिन्ता में आग ढूँढ़ने चले गये। वैद्यजी उठने की चेष्टा कर रहे थे कि सहसा देवदत्त इनके सम्मुख जाकर खड़े हो गये और नोटों का पुलिन्दा उनके आगे पटककर बोले—"ये पचहत्तर हजार के नोट हैं। यह आपका पुरस्कार और आपकी फीस है। आप चलकर गिरिजा को देख लीजिये और ऐसा कुछ दीजिये कि वह केवल एक बार और आँख खोल दे! यह उनकी एक दृष्टि पर न्योछावर है, केवल एक दृष्टि पर! आपको रुपये मनुष्य की जान से प्यारे हैं। वे आपके समक्ष हैं। मुझे गिरिजा का जीवन इन रुपयों से कई गुना प्यारा है।"

वैद्यजी ने लज्जामय सहानुभूति से देवदत्त की ओर देखा और केवल इतना ही कहा—"मुझे अत्यन्त शोक है, मैं सदैव के लिये तुम्हारा अपराधी हूँ, किन्तु तुमने मुझे शिक्षा दे दी। ईश्वर ने चाहा तो अब ऐसी भूल कदापि न होगी। मुझे शोक है! सचमुच महाशोक है!!"

ये बातें वैद्यजी के अन्तःकरण से निकली थीं।

अभ्यास

१—देवदत्त को रुपये कहाँ से और क्यों मिले?

२—इस कहानी का सारांश लिखो।

वर्षा-वर्णन

(गोस्वामी तुलसीदास)

घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।
दामिन दमक रही घन माहीं। खल के प्रीत जथा थिर नाहीं।
बरषहिं जलद भूमि नियराए। जथा नवहिं बुध विद्या पाए।
बूँद अघात सहहिं गरि कैसे। खल के वचन संत सह जैसे।
क्षुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई।
भूमि परत भा डाबर पानी। जनु जीवहिं माया लपटानी
समिटि समिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा।
दो०—हरित भूमि तृन-संकुल, समुझि परहि नहिं पंथ।
जिमि पाखंड-विवाद तें, लुप्त होहिं सद ग्रंथ ॥१॥
दादुर धुनि चहूँ दिसा सुहाई। वेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई।
नव पल्लव भए विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका।
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ।
खोजन कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करै क्रोध जिमि धरमहिं दूरी।
ससि-सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कहँ सम्पत्ति जैसी।
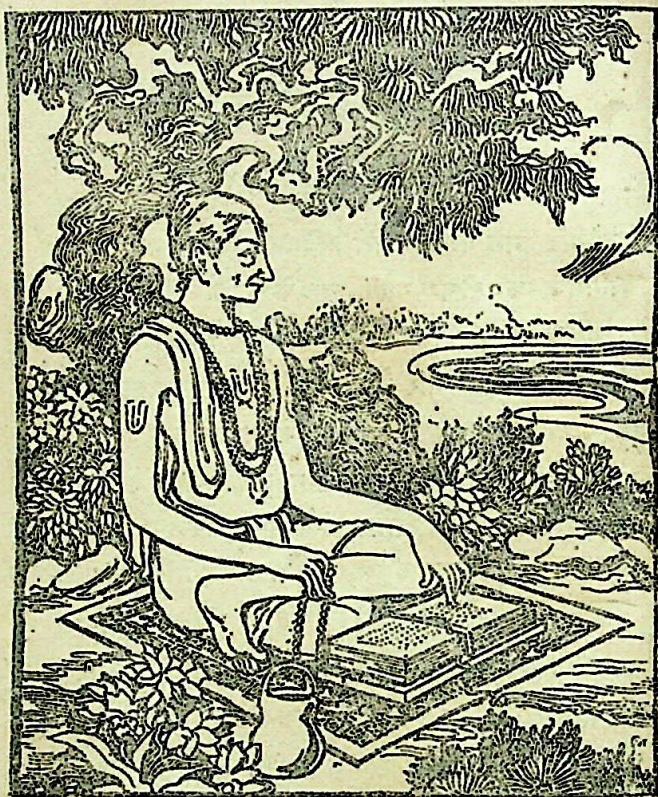
गोस्वामी तुलसीदास

निसी तम वन खद्योत विराजा। जनु दंभिन्ह कर जुरा समाजा।
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भए विगरहि नारी।
कृषि निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना।
देखियत चक्रवाक खग नाहीं। कलिहिं पाइ जिमि धरम पराहीं।
ऊसर बरषै तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा।
विविध जंतु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा।

दोहा—कबहूँ प्रबल बह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजे, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥२॥
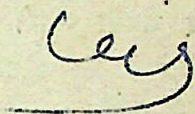
१—इस कविता की प्रथम सात पंक्तियों के अर्थ लिखो।

२—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ:—

संकुल, सद्ग्रंथ, दंभ, विविध, अर्क और निसि।

३—शुद्ध रूप लिखो :—

थिर, धरम, ससि, सुतंत्र।

———

कुश और लव की वीरता

(श्री शिवपूजन सहाय) ले० ५

पुराने समय के राजा अपनी प्रजा की ठीक-ठीक अवस्था जानने के लिये वेष बदल कर सारे राज्य में फेरी लगाया करते थे। त्रेता युग के प्रसिद्ध राजा श्री रामचन्द्र ने एक बार अपनी राजधानी अयोध्या में फेरी लगाते समय एक धोबी के मुँह से अपनी प्यारी रानी सीता की निन्दा सुन ली। राजा प्रजा के लिये होता है। राजा को प्रजा-पालन के आगे अपने वैयक्तिक सुख की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये। इस नीति का अनुसरण कर रामचन्द्र ने गर्भवती सीता को जंगल में छुड़वा दिया। उसी जंगल में वाल्मीकि मुनि का आश्रम था। मुनिजी अकेली सीता को रोते-कलपते देखकर अपनी कुटिया में बड़े आदर और नेह-छोह के साथ ला रक्खा। वहीं उनके दो बालक पैदा हुए— कुश और लव।

कुश और लव

कुश बड़े थे, लव छोटे—दोनों वीर थे। मुनिजी ने उन्हें खूब विद्या पढ़ाई—सब तरह के हथियार चलाना भी सिखाया। दोनों ही बड़े तेजस्वी निकले। रामचन्द्र जैसे प्रतापी पिता, सीता-सी सती सुन्दरी माता, भरत-लक्ष्मण जैसे धनुर्धर चाचा, फिर क्यों न बढ़े-चढ़े बहादुर हों? तीर-कमान चलाने में ऐसे पक्के थे, कि अपने तीनों चाचाओं को लड़ाई के मैदान में सुला दिया और लंका के विजयी वीर बन्दरों को मदारी के बन्दरों का नाच नचा डाला।

बात ऐसी हुई कि अयोध्या में रामचन्द्रने अश्वमेध यज्ञ ठाना। यज्ञ का घोड़ा दिग्विजय के लिये छोड़ा गया। उसके साथ पहले शत्रुघ्न तैनात किये गये। वे लवणासुर को मारकर उस जंगल में घोड़े के पीछे-पीछे जा पहुँचे। वहाँ लव ने घोड़ा पकड़ लिया। शत्रुघ्न ने मुनि का बालक जानकर बहुत समझाया और धमकाया, पर लव ने बिना लड़े घोड़ा देने से इन्कार किया। फिर लड़ाई छिड़ गई। एक ओर अकेले कुश और लव—दूसरी ओर शत्रुघ्न और उनकी अपार सेना। किन्तु, कुश और लव ने मारे बाणों के सब को बेदम कर दिया। शत्रुघ्न अचेत हो गिर पड़े, सेना भाग चली।

लड़ाई के दूत दौड़ते हुए अयोध्या पहुँचे—राजा रामचन्द्र से रघुवंशी सेना की दुर्दशा कह सुनाई। तब उन्होंने लक्ष्मण को भेजा और दोनों बालकों को बाँध लाने की आज्ञा दी। पर बाँध लाना तो दूर रहा, लक्ष्मण उनके चेहरे पर तनिक सिकुड़न भी न ला सके। मेघनाद को मारने में वे जितने अस्त्र काम में ला चुके थे, सबकी पूरी अजमाइश की, पर कुश और लव ने सबको फूँक कर उड़ाया—गदायुद्ध में भी दोनों बालक अन्त तक डटे ही रह गये। आखिर उन्होंने लक्ष्मण को खेत में सुलाकर ही साँस ली। सेना में भगदड़ मच गई, पर वीर बालकों ने भागती हुई सेना का पीछा नहीं किया। कायरों पर हाथ उठाना वीरों का काम नहीं।

फिर दूतों ने जाकर रामचन्द्रजी के सामने त्राहि-त्राहि की आवाज लगाई। तब उन्होंने तीसरी बार भरत को भेजा। साथ में सुग्रीव, हनुमान, अंगद, विभीषण आदि भी गये। राम-रावण युद्ध में इनके हौसले बढ़े हुए थे। पर जब लव-कुश से काम पड़ा, तब सारी हेकड़ी किड़ेकिड़ी हो गई। पहाड़ और पेड़

उखाड़ते-उखाड़ते हनुमान-अंगद के दम छूट गये—वीर बालकों ने सबको तिल समान काट फेंका! सुग्रीव बगलें झाँकने लगे, जामवन्त सिर खुजलाते रह गये और विभीषण के लिलार में सिकुड़न पड़ गई—भरत की समझ में न आया कि ये बालक किस धातु के बने हैं। वे क्रोध से जल उठे—कान तक कमान का रौंदा तानकर ऐसा बाण मारा कि लव चक्कर खाकर गिर पड़ा। अब कुश के रोष का ठिकाना न रहा। जान का मोह छोड़कर वह भरत के पीछे पड़ गया—उन्हें पानी-पानी कर डाला—लक्ष्मण और शत्रुघ्न की दशा को पहुँचाकर ही पिंड छोड़ा। सारी सेना हाहाकार कर तितर-बितर हो गई।

जब रामचन्द्रजी ने तीसरी बार दूतों से अपने भाईयों और सैनिकों की दुर्गति सुनी, तब मन-ही-मन बहुत हँसे, क्योंकि वे सब बातें जानते थे, पर मन की बात मन ही में रखकर नई सेना के साथ जंगल को चल पड़े। वहाँ अपने प्यारे वीर बन्दरों को खूब बढ़ावा देकर ललकारा। वे नये सिरे से उत्साहित होकर साहस के साथ लड़ने लगे। पर बालकों ने उसके चलाये पहाड़ों की धूल उड़ा डाली और पेड़ों को तिनके के समान चूर-चूर

कर दिया। जामवन्त और हनुमान को बाँधकर घोड़े की रखवाली सौंप दी—सुग्रीव, अंगद, विभीषण को बुरी तरह फटकार बताई—वह-वह बातें सुनाईं कि वे सिर न उठा सके।

इस प्रकार सबको पस्त करके वे श्रीरामचन्द्रजी के पास लड़ने की लालसा से आये। वहाँ देखा कि वे अपने रथ पर निश्चिन्त सोये हुए हैं। तब उन्होंने उसी प्रकार पड़े हुए भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न के शरीर से अच्छे-अच्छे कपड़े उतार लिये और बन्दी बन्दरों तथा घोड़ों के साथ हँसते-खेलते अपनी माता के पास पहुँचे। जब सीता ने उन सुन्दर कपड़ों और बन्दरों को पहचाना और अपने बालकों के मुँह से सारी कहानी सुनी, तब उनके आश्चर्य और दुख का ओर-छोर न रहा। वे धरती पर लोटकर रोने लगीं। बेचारे मुनिजी अपने आश्रम में इस घटना की घनघोर काली घटा घिरी देखकर बड़े चिन्तित हुए। किसी तरह सीता को समझा-बुझाकर उन बालकों के साथ रामचन्द्रजी के पास गये और वहाँ उन बालकों का परिचय देकर, घोड़े सहित रामचन्द्रजी को सौंप दिया।

बिछुड़ी हुई सती-सीता और रणबाँकुरे पुत्रों को पाकर रामचन्द्रजी का हृदय आनन्द से नाच उठा।

अभ्यास

१. लव और कुश कौन थे ?

२. इस पाठ के समस्त स्त्रीलिंग शब्दों को चुनो।

३. इसके संक्षिप्त परिचय दो—

हनुमान, अंगद, विभीषण, जामवन्त।

प्रेम की मूर्ति

[श्री बदरीनाथ वर्मा)

बापू प्रेम की मूर्ति थे। उनके हृदय में सबके लिए प्रेम का भाव था। वे किसी एक देश, समाज, जाति या धर्म के नहीं थे; प्रत्युत सारे संसार के थे। उनकी दृष्टि में न कोई छोटा था, न बड़ा; न कोई स्वजातीय था, न विजातीय; न कोई अपने देश का था, न विदेश का; न कोई हिन्दू था न कोई मुसलमान; न कोई सिक्ख था, न क्रिस्तान; न कोई अपना था, न पराया! उनकी दृष्टि में सभी लोग बराबर थे और वे सामान रूप से सबका कल्याण चाहते, सबके दुःख से दुखी और सुख से सुखी थे। यह ठीक है कि उनका कार्य-क्षेत्र प्रत्यक्षतः भारतवर्ष ही था और यहाँ के निवासी ही उनके प्रेम और सेवाओं के सीधे सन्निकट पास थे; पर उनका हृदय संकुचित परिधि के अन्दर आबद्ध नहीं था; और जो कुछ वे करते उनका अन्तिम लक्ष्य मनुष्य-समाज का कल्याण, विश्व की शान्ति
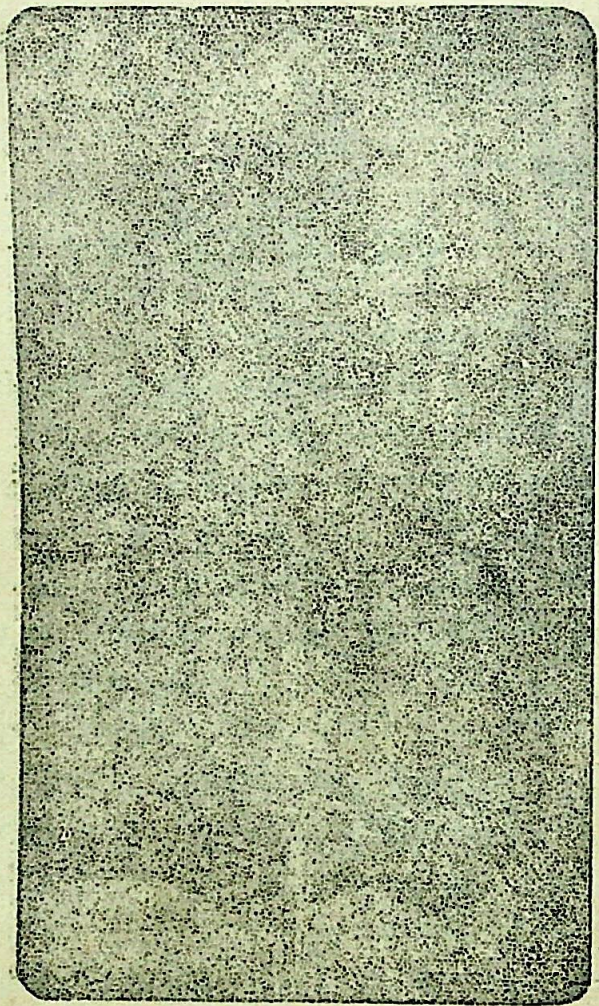
प्रेम की मूर्त्ति बापू

और सुख था। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता की लड़ाई, यहां के पीड़ितों और दलितों के उद्धार की चेष्टा से उनकी दृष्टि में दासता और दुःख से संसार की मुक्ति का ही एक रूप था। वे तो सारे संसार को एक नये आधार पर प्रतिष्ठित करना चाहते थे; मानव समाज को सच्ची मनुष्यता की भित्ति पर बिठाना चाहते थे। वे एक ऐसे समाज की सृष्टि करना चाहते थे जिसमें मनुष्य, मनुष्य का मूल्य समझें, सबके हृदय में एक-दूसरे के लिये प्रेम हो, सब ऊपर उठें और भाई-भाई की तरह रहकर सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत करें।

गाँधीजी ने जो कोई काम उठाया या किया वह इसी विश्व-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर; और जो कोई भी आन्दोलन आरम्भ किया उसमें स्वयं अपने को ही अगुआ बनाया, कोरा उपदेश देकर उसे चलाने का भार दूसरों पर नहीं छोड़ा। इसमें उनके साधारण से-साधारण कार्यों में भी संजीवनी थी; वास्तविकता थी जो दूसरों के बड़े-बड़े कार्यों में साधारणतया नहीं देखी जाती। यही कारण है कि उनका प्रभाव सभी श्रेणियों, सभी विचारों, सभी रुचियों और अवस्थाओं के लोगों पर पड़ा और सबने प्रत्यक्ष अनुभव किया कि संसार में एक महापुरुष है जो अपने लिये नहीं, प्रत्युत

संसार के लिये जीता है; जो दूसरों के कल्याण के लिये कोई भी कष्ट बड़ा नहीं समझता और जो अपने प्राणों की भी बाजी लगा देता है कि दुनिया जिये और सुख-चैन से रहे। सबने समझा कि वे अपने हैं—आत्मीय हैं।

लोग जानते हैं कि महात्मा गाँधी के मुख्य सिद्धान्त अहिंसा और सत्य के थे। अहिंसा का क्रियात्मक रूप ही प्रेम है। जहाँ अहिंसा नहीं वहाँ प्रेम नहीं हो सकता। प्रेम और अहिंसा दोनों अभिन्न हैं। लोक-प्रेम का पुजारी अहिंसा पर इतना जोर दे, यह स्वाभाविक ही है। और सत्य के बिना तो संसार चल ही नहीं सकता। 'लोकः सत्ये प्रतिष्ठितः' तो इस देश का चिरपरिचित सिद्धांत है। सत्य के आधार पर ही प्रेम की अवस्थिति है। इसलिये लोक-कल्याण के मूल-भूत-सिद्धान्त सत्य और अहिंसा हैं। इसीसे उन्होंने इन्हें अपना मूल-मंत्र बनाया और सभी लोगों को इनपर ही अपने आचरण को अवलंबित करने का उपदेश दिया है। ये सिद्धान्त कितने कार्यकर सिद्ध हुए इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो भारतवर्ष की स्वतंत्रता ही है जो हमें इतनी सस्ती और इतने कम प्रयास और बलिदान से मिली है कि जिसका जोड़ इतिहास सामने नहीं रखता।

जबतक इतिहास रहेगा तबतक उनका नाम आदर और सम्मान के साथ लिया जायगा। ऐसे महापुरुष के बताये माग पर चलकर आओ, हम अपने को धन्य करें और उनके प्रति अपनी भक्ति को सार्थक बनावें।

अभ्यास

१—गाँधीजी का प्रभाव लोगों पर इतना अधिक क्यों पड़ा ?

२—गाँधीजी के मुख्य सिद्धान्त क्या थे ?

बाल भावना

[संत सूरदास]

(१)

मैया, कबहिं बढ़ैगी चोटी ?

कती बार मोहि दूध पियत भई अजहुँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की वेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन-सी भू लोटी ॥
काँचो दूध पियावत पचि-पचि देत न माखन-रोटी ।
सूर-स्याम जिरजीवी दोउ भैया हरि हलधर की जोटी ॥

(२)

चन्द्र खिलौना लैहों मैया मेरी, चन्द्र खिलौना लैहों ।
धौरी को पय पान न करिहौं, वेनी सिर न गुथैहौं ।
मोतिन्न-माल न धरिहौं, वेनी सिर न गुथैहौं ॥
मोतिन-माल न धरिहौं उर पर तेरी गोद न ऐहौं ।
लाल कहैहौं नन्द बबा कों तेरो सुत न कहैहौं ॥
कान लाय कछु कहदि जसोदा दाउहि नाहि सुनैहौं ।
चन्दा हूँ ते अति सुन्दर तोहि नवल दुलहिय ल्यैहौं ॥

तेरी सौंह मेरी सुन मैया, अबहि ब्याहन जैहौं।
सूरदास सब सखा बराती, नूतन मंगल गैहौं॥

(३)

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो।

भोर भयो गोपन के पीछे मधुबन मोहि पठायो।
चार पहर बंशीवट भटक्यो साँझ परे घर आयो॥
मैं बालक बहियन को छोटो छीको केहि विधि पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबर मुख लपटायो॥
तू जननी मति की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उदय है जानि परायो जायो॥
यह ले अपनी लकुटि कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
'सूरदास' तब बिहँसि जशोदा लै उर कण्ठ लगायो॥

(४)

मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायो।

मोसों कहत, मोल को लीनों, तू जसुमति कब जायो।
कहा करौं यहि रिस के मारे, खेलन हौं नहि जात॥
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तात।
गोरे नन्द जसोदा गोरी, तुम कत स्याम सरीर॥
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर।
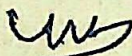
तू मोही को मारन सीखो, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस समेत लखि, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥

अभ्यास

१—प्रथम पद का भावार्थ लिखो।

२—बलराम कृष्ण को क्या कहकर चिढ़ाते थे?

३—शुद्ध रूप लिखो—जतन, हरख।

गंगा-मैया

[श्री काका कालेलकर]

गंगा यदि और कुछ नहीं भी करती, केवल एक भीष्म को ही जन्म दे गई होती, तो भी आर्य जाति की माता के रूप में विख्यात होती। भीष्म की टेक, भीष्म की निःस्पृहता, भीष्म का ब्रह्मचर्य और भीष्म का तत्त्वज्ञान-ये आर्य-जाति के लिये सर्वदा के लिये आदर-पत्र बन चुके हैं। ऐसे महापुरुष की माता के रूप में हम गंगा को पहचानते हैं।

नदी के लिये कोई उपमा शोभा देती है तो माता की ही। नदी के किनारे बसे कि अकाल का भय भागा। देवराज इन्द्र जब दगा देते हैं तब नदी माता हमारी फसल तैयार करती है। नदी का किनारा ही मानों शुद्ध और शीतल वायु है। नदी के किनारे-किनारे घूमने निकलते ही प्रकृति के मातृ-वात्सल्य के अनन्त प्रवाह के दर्शन होते हैं। नदी यदि बड़ी हो और उसका प्रवाह धीर गम्भीर हो, तो किनारे पर रहनेवालों की सारी सम्पत्ति-समृद्धि नदी के ही कारण होती

है ! सच ही, नदी जन-समाज की माता है। नगर की गली में घूमते-घूमते यदि कहीं किसी कोने से हमें नदी के दर्शन होते हैं, तो हम कितने प्रसन्न हो जाते हैं! कहाँ नगर का मैला वातावरण और कहाँ नदी के प्रसन्न दर्शन! तुरत ही दोनों का भेद जान पड़ता है। नदी ईश्वर नहीं है; किन्तु ईश्वर का स्मरण करनेवाली देवी है। यदि गुरु की वन्दना करना उचित है तो नदी की भी वन्दना करनी चाहिये।

यह तो कई सामान्य नदी की बात है। किन्तु, गंगा मैया तो आर्य-जाति की माता हैं। आर्यों के बड़े-बड़े साम्राज्य इसी नदी के किनारे स्थापित हुए हैं। अंग-बंगादि देशों के साथ कुरु-पांचाल देशों का संयोग गंगा मैया ने ही किया है। आज भी भारत की जन-संख्या गंगा मैया के किनारे ही सबसे अधिक है।

जब हम गंगा के दर्शन करते हैं, तब केवल हरे-भरे अनाज से लदे हुए खेत ही ध्यान में नहीं आते और न माल से लदी हुई नावें ध्यान में आती है किन्तु व्यास-वाल्मीकि की कविता, बुद्ध और महावीर के विहार, अशोक समुद्रगुप्त या हर्ष जैसे सम्राटों के पराक्रम और तुलसीदास या कबीर जैसे सन्त-जनों के भजन ये सब याद आते हैं।

किन्तु; गंगा के दर्शन कुछ एकविध नहीं हैं। गंगोत्तरी के पास के हिमाच्छादित प्रदेशों में इसका क्रीड़ाप्रिय रूप; उत्तर-काशी की ओर का—चीर देवदारु के काव्यमय प्रदेश का शोभन स्वरूप; देवप्रयाग की पहाड़ी और सकरे प्रदेश में चमकीली अलकनन्दा के साथ ही इसकी क्रीड़ाएँ; लक्ष्मण झूला की विकराल दंष्ट्र से छूटने पर हरद्वार में इसका अनेक धाराओं में स्वच्छन्द विहरण, कानपुर की बगल से जाता हुआ इसका इतिहास-प्रसिद्ध प्रवाह; प्रयाग के विशाल वृक्ष के ऊपर इसका यमुना के साथ त्रिवेणी-संगम—हरएक की शोभा कुछ-कुछ न्यारी ही है। एक दृश्य देखने से दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। हर एक का सौन्दर्य भिन्न, हरएक का भाव भिन्न, हर एक का वातावरण भिन्न, हरएक का माहात्म्य भिन्न है।

प्रयाग में गंगा अलग ही स्वरूप धारण करती है। गंगोत्तरी से प्रयाग तक गंगा वर्द्धमान होने पर भी एक रूप की गिनी जायगी, किन्तु प्रयाग के पास इससे यमुना मिलती है। यमुना का तो पहले से ही दुहरा शरीर है। वह खेलती है, कूदती है; किन्तु खिलाड़ी नहीं देखती। गंगा शकुन्तला के समान तपस्वी कन्या-सी दीखती है और काली यमुना द्रौपदी के सामने मानिनी राजकन्या-सी जान पड़ती है। जब हम शर्मिष्ठा और देवयानी की कथा सुनते हैं तब भी महा कठिनाई से मिलनेवाले गंगा और

यमुना के शुक्ल और कृष्ण प्रवाह याद आते हैं। हमारे पूर्वजों ने सब संगमों में गंगा-यमुना का संयोग सबसे अधिक पसंद किया है और उसीसे उसका 'तीर्थराज प्रयाग' के जैसा गौरव-भरा नाम रक्खा है। भारत में जबसे मुसलमान आये तबसे जिस भाँति उसका इतिहास बदला, उसी भाँति दिल्ली, आगरा और मथुरा-वृन्दावन के पास से आती हुई यमुना के प्रवाह के कारण गंगा का स्वरूप एकदम बदल गया है।

प्रयाग के बाद गंगा गम्भीर और सौभाग्यवती दिखलाई पड़ती है। इसके बाद इसमें बड़ी-बड़ी नदियाँ मिल जाती हैं। यमुना का जल मथुरा-वृंदावन से श्रीकृष्ण के स्मरण अर्पित करता है और अयोध्या से आती हुई सरयू आदर्श राजा रामचन्द्र के प्रतापी—किन्तु करुण-जीवन के स्मरण लाती है। दक्षिण दिशा से आती हुई चंबल नदी रंतिदेव के यज्ञ याग की बात करती है, तो उधर से महान् कोलाहल करता हुआ शोणभद्र मगध-साम्राज्य की कथा की याद दिलाती है। इस प्रकार पुष्ट होकर गंगा पाटलीपुत्र के पास मगध-साम्राज्य के समान ही विस्तीर्ण हो जाती है; तो भी अपना अमूल्य कर-भार लेकर आती हुई गंडकी भी गज-ग्राह के दारुण युद्ध की कथा सुनाना नहीं भूलती। बिहार की प्राचीन भूमि से आगे बढ़ने में गंगा मानों इस विचार में पड़ जाती है कि अब कहाँ जाना

चाहिए ? इतने में अल्हड़ कोशी भी अपनी सात धाराओं का जल इसे भेंट देने के लिए पहुँच जाती है। ऐसी प्रचंड जलराशि जब अपने अमोघ वेग से पूर्व की ओर बही जा रही हो; तब इसे दक्षिण की ओर घुमाना क्या सहज है ? मगर तो भी यह उसी ओर घूमी है।

जिस प्रकार दो सम्राट् या दो जगद्गुरु परस्पर एकाएक नहीं मिलते, उसी प्रकार गंगा और ब्रह्मपुत्र का परस्पर मिलन हुआ-सा दीखता है। ब्रह्मपुत्र नदी हिमालय के उस पार का सारा पानी लेकर आसाम होकर पश्चिम की ओर आती है और गंगा इस बाजू से पूर्व की ओर जाती है। इनका मिलाप भला आमने-सामने कैसे हो ? कौन किसे पहले नमस्कार करे या कौन किसे राह दे ? अन्ततः दोनों ने निश्चित किया है कि दोनों ही दाक्षिण्य का अभ्यास करके सरित्पति के दर्शन करने जायँ और भक्ति-नम्र होकर जाते-जाते जहाँ बने वहाँ पथ में ही परस्पर मिल लें।

इस प्रकार गोआलन्दो के पास गंगा और ब्रह्मपुत्र के विशाल जल जब मिलते हैं तब यह शंका उत्पन्न होती है सागर क्या इससे कुछ भिन्न होता होगा ? विजय प्राप्त होने पर भलीभाँति सिखाई हुई सेना भी जिस तरह अव्यवस्थित हो जाती है और विजय वीर जैसा चाहे वैसा करते हैं, वही दशा इन बहती नदियों की होती है। ये अनेक-मुख होकर सागर से जा मिलती

हैं। हर एक प्रवाह का अलग ही नाम होता है, और किसी-किसी प्रवाह के तो एक से भी अधिक नाम है। गंगा पूर्व की ओर जाकर 'पद्‌मा' का नाम धारण करती है। यही धारा ब्रह्मपुत्र से मिलने पर 'पद्‌मा' के नाम से विख्यात होती है।

यह अनेक मुखी गंगा कहाँ जाती है? सुन्दर वन में बेंतों के झुण्ड उगाने या सगर-पुत्रों की वासना तृप्त करके उनका उद्धार करने? आज जाकर देखोगे तो पुराने काव्य में से कुछ भी नहीं रहा है। जहाँ दृष्टिपात करो वहीं सन के बोरे बनाने वाली मिलें और उनके जैसे ही दूसरे विरूप कारखाने दिखलाई पड़ेंगे। जहाँ से भारतीय शिल्प की असंख्य वस्तुएँ, भारतीय जहाजों में लंका अथवा जावाद्वीप तक जाती थीं, वहाँ से अब विदेशी आगबोटें—परदेशी कारखानों में बना कचरा माल भारत में पाट देने के लिए—आती हुई दिखलाई पड़ती हैं। गंगा-मैया तो पहले के ही समान हमें समृद्धियाँ अर्पित करती हैं; किन्तु हमारे निर्बल हाथ इन्हें ले नहीं सकते।

गंगा-मैया तुम्हारे भाग्य में यह दृश्य देखना कब तक बदा है?

अभ्यास

१—गंगा में कौन-कौन नदियाँ गिरती हैं?

२—गंगा ने हमलोगों का कौन-कौन उपकार किये हैं?

३—गंगा के कुछ प्रवाहों के नाम बताओ।

४—गंगातट के कुछ प्रमुख शहरों के संक्षिप्त परिचय लिखो।

———

चन्द्रगुप्त

[श्री जयशंकर प्रसाद]

नाटक के पात्र--

सिकन्दर—यूनान का राजा।

चन्द्रगुप्त—भारत का भावी सम्राट्।

सेल्यूकस—सिकन्दर का प्रधान सेनापति।

एंटीगोनस—एक यूनानी सेनापति।

× × ×

स्थान—सिन्धु का तट, दूर में यूनानी जहाजों का वेड़ा।

समय—संध्या

(नदी के तट पर शिविर के सम्मुख सिकन्दर और सेल्यूकस अस्तंगामी सूर्य की ओर देख रहे हैं। हेलेन सेल्यूकस का हाथ पकड़े हुए उसके पार्श्व में खड़ी है और सूर्य की किरणें उनके मुख पर पड़ रही हैं।)

सिकन्दर—सेल्यूकस! सच है, यह देश बड़ा विचित्र है। दिन में प्रचण्ड सूर्य इसके गाढ़ नीलाकाश को जलाकर चला जाता है और रात्रिकाल में शुभ्र चन्द्रमा आकर उसको अपनी

स्निग्ध चाँदनी से स्नान करा देता है। अँधेरी रात में जिस समय अगणित तारागणों में इस देश का आकाश झलमल-झलमल करता है तब मैं विस्मित आतंक से देखा करता हूँ। वर्षा-ऋतु में जब काले-काले मेघ गुरु-गम्भीर गर्जन करते हुए प्रकांड दैत्य-सैन्य की भाँति इसका आकाश छा लेते हैं, तब मैं निर्वाक् होकर खड़ा-खड़ा देखता हूँ। इस देश का शिरो भूषण आकाश चुम्बन करनेवाला, नीलवर्ण का हिमालय अपने सिर के ऊपर श्वेत तुषार-मुकुट धारण किए हुए, स्थिर भाव से खड़ा है। इसके विशाल नद मस्त होकर फेन उठाते हुए बह रहे हैं, और इस देश की मरुभूमि स्वच्छन्द होकर बालू से खेला करती है।

सेल्यूकस—सच है, सम्राट् !

सिकन्दर—कहीं देखता हूँ कि ताल-वन गर्व से माथा ऊँचा किये खड़ा है, कहीं विराट् वट-वृक्ष अपनी स्नेहच्छाया चारों ओर फैला रहा है, कहीं मदमत्त मातंग पर्वत की तरह धीरे-धीरे चल रहा है, कहीं विशाल अजगर अलसाकर वक्र रेखा में पड़ा हुआ है, कहीं बड़े-बड़े सींगवाले हरिण मुग्ध हो विस्मय के साथ निर्जन वन में शून्य दृष्टि से देख रहे हैं और सबसे बड़ी बात यह है कि एक सौम्य, गौर सुन्दरजाति इस देश का शासन कर रही है उसके मुख पर शिशु-सारल्य है, देह में वज्र

की शक्ति है, चक्षु में सूर्य की दीप्ति है और वक्षस्थल में आँधी-जैसा साहस है। इस शौर्य को पराजित करने में आनन्द है। जानते हो, राज पुरु को जब मैंने कैद किया था तब उसने क्या कहा था ?

सेल्यूकस—क्या सम्राट् ?

सिकन्दर—मैंने उससे पूछा—तुम मुझसे किस प्रकार के अत्याचरण की आशा करते हो ? उसने निर्भिक निष्कम्प स्वर से उत्तर दिया—'एक राजा के प्रति दूसरे राजा को जो आचरण उचित हो उसकी।' मैं दंग रह गया और मैंने जाना कि हाँ, यही एक जाति है ! मैंने उसी समय राज्य लौटा दिया।

सेल्यूकस—सम्राट् महानुभाव हैं।

सिकन्दर—महानुभाव ? ऐसा उत्तर देने पर उसके साथ और कौन-सा व्यवहार किया जा सकता था ? महान् को देखकर एक प्रकार का उल्लास प्राप्त होता है। और; मैं यहाँ कोई साम्राज्य स्थापन करने थोड़े ही आया हूँ। मैं शौकिया दिग्विजय करने आया हूँ और चाहता हूँ कि संसार में कुछ कीर्ती छोड़ जाऊँ।

सेल्यूकस—तो फिर सम्राट् इस दिग्विजय को असम्पूण छोड़कर क्यों लौटे जा रहे हैं ?

सिकन्दर—इस दिग्विजय को सम्पूर्ण करने के लिए नूतन यूनानी सैन्य की आवश्यकता है। कैसा आश्चर्य है सेनापति !

सुदूर मैसिडन से मैं अनेक राज्यों और जनपदों को तिनकों के समान पददलित करता आ रहा हूँ। मैंने आँधी की भाँति आकर शत्रुओं की बड़ी-बड़ी सेनाओं को धूमिराशि की भाँति उड़ा दिया है। लगभग आधा एशिया मसिडन की विजय-वाहिनी के वीर-पद-भार से कम्पित हो उठा है। होनहार की भाँति दुर्वार, हत्या की भाँति कराल, दुर्भिक्ष की भाँति निष्ठुर, मैं आधे एशिया के वक्षःस्थल के ऊपर अपना रुधिराक्त विजय-शकट बिना किसी रोक-टोक के निकाल लाया हूँ, किन्तु बाधा यदि कहीं पाई है तो पहले-पहल इस सतलज नदी के किनारे।

[चन्द्रगुप्त को पकड़े हुए एंटीगोनस का प्रवेश]

सिकन्दर—क्या है, एंटीगोनस ? यह कौन है ?

एंटीगोनस—भेदिया है हुजूर ? भेदिया।

सेल्यूकस—एँ, यह क्या ?

सिकन्दर—भेदिया ?

एंटीगोनस—हाँ मैंने देखा कि शिविर के पास निर्जन स्थान में सूखे तालपत्र पर कुछ लिख रहा है। मैंने उसको देखना चाहा। इसने पत्र तो दिखा दिया, पर मैं उसे पढ़ न सका, इसलिए सम्राट् के सम्मुख ले आया हूँ।

सिकन्दर—क्या लिखते थे युवक ! सच बोलो ?

चन्द्रगुप्त—सच बोलूँगा।—राजाधिराज? सच बोलूँगा। भारतवासियों ने झूठ बोलना अबतक नहीं सीखा।

(सिकन्दर ने एक बार सेल्यूकस की ओर देखा, फिर चन्द्रगुप्त से कहा)

सिकन्दर—अच्छा, ठीक-ठीक बोलो, क्या लिखते थे?

चन्द्रगुप्त—मैं सम्राट् का सैन्य-संचालन, व्यूह-रचना प्रणाली, सामरिक नियम—ये सब बातें लगभग एक महीने से सीख रहा हूँ।

सिकन्दर—किसके पास?

चन्द्रगुप्त—इन्हीं सेनापति के पास।

सिकन्दर—क्या यह सच है, सेल्यूकस?

सेल्यूकस—सच है।

सिकन्दर—(चन्द्रगुप्त से) फिर?

चन्द्रगुप्त—फिर जब मैंने यह सुना कि यूनानी सेना कल इस स्थान से चली जायगी, तब जो कुछ मैंने सीखा था उसको लिख रहा था।

सिकन्दर—किस अभिप्राय से?

चन्द्रगुप्त—सिकन्दरशाह के साथ युद्ध करने के अभिप्राय से नहीं।

सिकन्दर—तो?

चन्द्रगुप्त—तो सुनिये सम्राट्, मैं मगध देश का राजपुत्र चन्द्रगुप्त हूँ। मेरे पिता का नाम था महापद्म। मेरे सौतेले भाई

नन्द ने सिंहासन पर अधिकार कर लिया है और मुझे देश से निकाल दिया है। मैं उसी का बदला लेने की चिन्ता में इधर-उधर फिर रहा हूँ ?

सिकन्दर—फिर ?

चन्द्रगुप्त—फिर मैंने मैसिडन के नृपति की अद्भुत विजय की कथा सुनी। सुना कि आधे एशिया को पददलित करके नद-नदियों और पर्वतों का दुर्वार विक्रम द्वारा अतिक्रम करके उन्होंने भारतवर्ष में आकर आर्य कुल-रवि महाराज पुरु को पराजित किया है। यह सुनकर मेरी यह इच्छा हुई कि देख आऊँ कैसे हैं वे पराक्रमी सम्राट्, जिनकी भृकुटी को देखकर सारा एशिया महादेश उनके चरणों पर लोटने लगा है। वह शक्ति कहाँ छिपी हुई है। जिसके संघात से आर्यों का महावीर्य भी विचलित हो उठा है। इसीलिये यहाँ आकर मैं सेनापति से शिक्षा प्राप्त कर रहा था मेरी इच्छा अपने गये हुए राज्य को फिर लौटा लेने की है। केवल यही है।

(सिकन्दर ने सेल्यूकस की ओर देखा)

सेल्यूकस—मैंने यह नहीं समझा था। युवक का चेहरा और बात-चीत मुझे अच्छी लगती थी। अतः मैं सरलभाव से यूनानी सामरिक प्रथा के सम्बन्ध में इस युवक के साथ चर्चा

किया करता था। यह मैं नहीं समझता था कि यह विश्वास-घातक है।

एंटीगोनस—कौन विश्वासघातक ?

सेल्यूकस—यही युवक।

एंटीगोनस—वह युवक नहीं, तुम।

सेल्यूकस—एंटीगोनस! मेरी वयस का यदि तुम मान नहीं करते तो न सही, पर मेरी पदवी का तो तुम्हें मान करना चाहिये।

एंटीगोनस—जानता हूँ कि तुम यूनानी सेनापति हो, तथापि तुम विश्वासघातक हो।

सेल्यूकस—एंटीगोनस! (म्यान से तलवार खींच ली)

(एंटीगोनस ने भी जल्दी से तलवार खींच ली और उसे सेल्यूकस के सिर को लक्ष्य करके चला गया। उससे भी अधिक शीघ्रता के साथ चन्द्रगुप्त ने अपनी तलवार निकालकर उस आघात का निवारण कर दिया। तब एंटीगोनस ने उसे छोड़कर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण किया)

सिकन्दर—ठहरो!

(उसी क्षण एंटीगोनस की तलवार चन्द्रगुप्त की तलवार की चोट से पृथ्वी पर गिर पड़ी। एंटीगोनस ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया।)

सिकन्दर—एंटीगोनस!

एंटीगोनस—जी!

सिकन्दर—तुम्हारी इस उद्धतता के कारण मैंने तुमको आज अपने राज्य से निर्वासित किया। एक सामान्य सेनाध्यक्ष की यहाँ तक स्पर्धा ? मैंने इस समय तक विस्मय से अवाक् होकर देख रहा था। तुम्हारी इतनी स्पर्धा हो सकती है, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा। जाओ, इसी क्षण मैंने तुमको निर्वासित किया।

(एंटीगोनस का प्रस्थान)

सिकन्दर—और तुम्हारा अपराध, सेल्यूकस! उतना बड़ा नहीं है, परन्तु भविष्य में ध्यान रहे कि यूनान के सम्राट् के सम्मुख यूनानी सेनापति को लाल-लाल आँखें दिखाना शोभा नहीं देता—और युवक ?

चन्द्रगुप्त—सम्राट् !

सिकन्दर—तुमको यदि कैद करूँ तो !

चन्द्रगुप्त—किस अपराध से सम्राट्।

सिकन्दर—मेरे पड़ाव में शत्रु का भेदिया बनकर तुमने प्रवेश किया, इस अपराध में।

चन्द्रगुप्त—इस अपराध में ! मैं समझता था कि सिकन्दर महावीर है; परन्तु देखता हूँ कि वह इतना डरपोक है कि एक गृहहीन निराश्रय राजपुत उसके पास छात्र रूप से आया

था, उससे भी वह इतना ग्रस्त हो गया ! यह मैंने कभी न समझा था कि सिकन्दरशाह इतना कायर पुरुष है।

सिकन्दर—सेल्यूकस, कैद करो।

चन्द्रगुप्त—सम्राट्, मुझे बिना मार डाले आप बन्दी न कर सकेंगे। तलवार म्यान से बाहर निकाल ली।

सिकन्दर—(सोल्लास) शाबश !—जाओ वीर ! तुमको बन्दी नहीं करूँगा। मैं केवल परीक्षा करता था। तुम निर्भय घर लौट जाओ, और मैं एक भविष्यवाणी करता हूँ उसको याद रक्खो। तुम एक दिन अपने हतराज्य का उद्धार करोगे और दुर्जय दिग्विजयी होओगे।—जाओ वीर ! तुम मुक्त हो।

(चन्द्रगुप्त का प्रस्थान। पटाक्षेप)

अभ्यास

१—चन्द्रगुप्त कौन था और सिकन्दर के शिविर में क्यों गया था ?

२—इस पाठ में सिकन्दर ने जो भारत का वर्णन किया है उसे अपनी भाषा में लिखो।

३—सिकन्दर कौन था और भारत क्यों आया था ?

४—निम्नलिखित समस्त पदों को अलग-अलग करके अर्थ लिखो—

गुरु-गम्भीर, तुषार-मुकुट, शिशु-सारल्य।

———

वही मनुष्य है

[श्री मैथिलीशरण गुप्त]

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी;
मरो परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।
हुई न यों सु मृत्यु तो वृथा मरे वृथा जिये;
मरा नहीं वही कि जो जिया न आपके लिये।
यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप ही सदा चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥१॥
उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती,
उसी उदार से धरा कृतार्थ भाव मानती।
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति गूंजती;
तथा उसी उदार को समस्त सृष्टि पूजती।
अखंड आत्मभाव जो असीम विश्व में मरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥२॥
सहानुभूति चाहिये, महा विभूति है यही,
वशीकृता सदैव है बनी हुई स्वयं मही।
विरुद्ध-भाव बुद्ध का दया-प्रवाह में बहा;

विनीत लोकवर्ग क्या न सामने झुका रहे !
अहा ! वही उदार है परोपकार जो करे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥३॥

रहो न भूल के कभी मदांध तुच्छ वित्त में,
सनाथ जान आपको करो न तर्क चित्त में।
अनाथ कौन है यहाँ, त्रिलोकनाथ साथ है,
दयालु दीनबंधु के बड़े विशाल हाथ हैं,
अतीव भाग्यहीन है, अधीर भाव जो मरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥४॥

"मनुष्य-मात्र बंधु है"—यही बड़ा विवेक है;
पुराण पुरुष स्वंभू पिता प्रसिद्ध एक हैं।
फलानुसार कर्म्म के अवश्य वाह्य भेद है,
परन्तु अंतरैक्य में प्रमाण भूत वेद है,
अनर्थ है कि बंधु ही न बंधु को व्यथा हरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥५॥

अभ्यास

१—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ लिखकर उनके प्रयोग वाक्यों में करो—

मर्त्य, प्रवृत्ति, कृतार्थ, अंतरैक्य।

२—पद सं० १ का अन्वय अर्थ लिखो।

३—पद सं० २ को मुखाग्र करके सुनाओ।

—:o:—

व्यायाम ठ०११

[श्री केदारनाथ गुप्त]

पहले प्रत्येक गाँव में और शहर के प्रत्येक मुहल्ले में एक-एक अखाड़ा हुआ करता था, जिसमें उस गाँव अथवा मुहल्ले भर के लोग मिलकर व्यायाम करते थे। इन अखाड़ों में अच्छे-अच्छे बलिष्ठ और भीमकाय पहलवान तैयार होते थे। बरसात में दंगल हुआ करते थे और अच्छे-अच्छे जोड़े लड़ते थे एवं उन्हें पुरस्कार भी दिया जाता था। किन्तु लोगों की प्रवृत्तियाँ बदलकर विलासिता की ओर अधिक जा रही हैं। इसलिये अखाड़े और दंगल की प्रथा अब घट रही है और लोगों का स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगड़ रहा है।

कॉलेजों और स्कूलों में पढ़नेवाले विद्यार्थियों की शारीरिक अवस्था और भी अधिक शोचनीय है। सोलह-सोलह, बीस-बीस वर्ष के नौजवान—जिनके चेहरे सदैव हीरे की तरह चमकने चाहिये—आज क्षीणकाय, मनमलीन दिखाई पड़ते हैं। दिन-रात पुस्तकों को पढ़ते-पढ़ते अपना दिमाग कमजोर

कर डालते हैं। व्यायाम करने की छुट्टी उन्हें नहीं मिलती। डंड-बैठक और कुश्ती से परहेज वे इस वास्ते करते हैं कि उनके शरीर में धूल लग जायगी और कपड़े मैले हो जायँगे। इने-गिने लोग हॉकी, फुटबॉल, क्रिकेट आदि खेलने के लिये खेल के मैदान में जाते हैं। कुछ विद्यार्थी एक-दो मील टहल आते हैं, किन्तु अधिकतर विद्यार्थी न तो खेल के मैदान में जाते हैं और न टहलने के लिये बाहर खुली हवा में निकलते हैं। विद्यार्थी-समुदाय इसी कारण अस्वस्थ रहता है और हमारे नौजवान अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

धनिकों की हालत भी विद्यार्थियों की तरह शोचनीय है। वे दिन-रात तकियों के सहारे गद्दी पर लेटे रहते हैं। बहुतों के शरीर का मांस थुलथुलाता हुआ लटका रहता है और घड़े के सदृश उनकी तोंदें भी सामने लटकती रहती हैं। बदहजमी उन्हें सदैव रहती है। चूरन की मदद से उन्हें शौच होता है। स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो जाता है।

मेदे में भोजन पचने से रस बनता है और रस से खून बनता है। तभी यह रक्त नियम से नाड़ियों में परिभ्रमण करता है। भोजन ठीक न पचने के कारण रक्त-संचालिनी सब नाड़ियाँ रक्त-ग्रहण करने में अशक्त हो जाती हैं और इसीलिये शरीर शिथिल हो जाता है। शरीर की नाड़ियाँ

विद्युत के तार की नाई निस्सत्व होती हैं। जिस प्रकार बिजली की धारा से बिजली के तार में उत्तेजना होती है उसी प्रकार व्यायाम द्वारा रक्त में हलचल पहुँचने से शरीर की नस-नाड़ियाँ उत्तेजित और कार्यशील हो जाती हैं।

भोजन को पचाने और उससे रस खींचने के लिये भी शरीर में गर्मी की आवश्यकता है और वह गर्मी व्यायाम के द्वारा पैदा की जा सकती है। व्यायाम द्वारा गर्मी पहुँचने से शरीर की नस-नाड़ियाँ भोजन के रस को वैसे ही खींचने लगती हैं जैसे पानी को बालू। शरीर में इस ग्राहिका शक्ति को पैदा करना ही वास्तव में व्यायाम का मुख्य उद्देश्य है।

व्यायाम का दूसरा उद्देश्य मल को शरीर से बाहर निकाल फेंकने की शक्ति को बढ़ाना भी है। हमारे शरीर में जिस प्रकार पोषक द्रव्य ग्रहण करने के मार्ग हैं, उसी प्रकार विजातीय द्रव्य को बाहर निकाल फेंकने के लिये भी गर्मी की आवश्यकता है और वह गर्मी व्यायाम ही के द्वारा पैदा हो सकती है। अतएव भोजन की पहचान और मल को शरीर से बाहर दूर फेंकने में सहायता देना व्यायाम के मुख्य उद्देश्य हैं। जिसका भोजन ठीक रीति से पचेगा और जिसका मल ठीक रीति से बाहर निकलेगा, वही मनुष्य स्वस्थ्य रहकर निरोग और दीर्घजीवी बनेगा।

व्यायाम दो प्रकार से किया जाता है—एक नियमित और दूसरा अनियमित। व्यायाम के नियमों को ध्यान में रखते हुए जो व्यायाम किया जाता है, वह नियमित व्यायाम कहलाता है, और इसके विपरीत का व्यायाम अनियमित है। लोहार दिन भर हथौड़ा चलाता है; यह अनियमित व्यायाम है। इससे उसका शरीर स्वस्थ और बलयुक्त नहीं होता। पहलवान नियम से कुछ काल तक प्रातः व्यायाम करता है, यह नियमित व्यायाम है। इस प्रकार के व्यायाम से शरीर सुडौल, बलयुक्त और सुसंगठित होता है।

व्यायाम करते समय अंगों की ओर अपनी इच्छा-शक्ति को पूर्णतया लगाना चाहिये। इच्छा-रहित व्यायाम लाभकारी नहीं होता और इसी कारण बहुत-से लोग व्यायाम के लाभों से प्रायः बंचित रहते हैं। जिस पेशी को जितना मजबूत करना चाहें उस पेशी में व्यायाम करते समय उतनी ही इच्छाशक्ति लगानी चाहिये।

व्यायाम करने से पेशियों में पीड़ा उत्पन्न होती है। बहुत-से लोग उस पीड़ा को नहीं समझते। वे व्यायाम करना बन्द कर देते हैं। वास्तव में इस प्रकार व्यायाम द्वारा उत्पन्न हुई पेशियों की पीड़ा पेशियों में नये बल प्राप्त करने की भूख पैदा किया करती है। अतएव पीड़ा होने से व्यायाम छोड़

देना एक भारी भूल है। उस पीड़ा की शांति व्यायाम ही से करनी चाहिये। पीड़ा होते हुए भी एक सप्ताह तक लगातार व्यायाम करने से पीड़ा दूर हो जाती है।

व्यायाम प्रारम्भ करने से पहले ही अधिक व्यायाम नहीं करना चाहिये। थोड़े-से प्रारम्भ करके बढ़ाना चाहिये। लगातार बहुत अधिक व्यायाम करना हानिकारक है।

किस प्रकार का व्यायाम किस व्यक्ति को करना चाहिये, इसकी व्यवस्था उसकी अवस्था पर निर्भर है। १० वर्ष की आयु तक के बालक को किसी प्रकार का व्यायाम करने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं प्रातःकाल से सायंकाल तक इतना दौड़ता और खेलता है कि उसका शरीर शिथिल हो जाता है और इसी दौड़-धूप में उसका व्यायाम हो जाता है।

१० से १६ वर्ष तक के लड़कों को नियमित रूप से व्यायाम प्रारम्भ करना चाहिये। इस अवस्था में देह की नसें, नाड़ियाँ और हड्डियाँ इतनी मुलायम होती हैं कि वृक्ष के अंकुर के समान उनकी वृद्धि सरलता से की जा सकती है। इस अवस्था में लड़कों को बाहर खुली स्वच्छ हवा में खूब दौड़ना चाहिये, और उन्हें खेलने के लिये खेल के मैदान में भेजना चाहिये। एक-एकपेशी की वृद्धि के लिये उसे डम्बल का व्यायाम भी करना चाहिये। १२ वर्ष के पश्चात् उसे डंड और बैठक करना चाहिये। ३०-४

डंड और इतनी ही बैठकें काफी हैं। कुश्ती भी थोड़ी-थोड़ी प्रारम्भ कर देनी चाहिये।

१६ वर्ष के पश्चात् तरुण अवस्था में कठिन व्यायाम करने की आवश्यकता है। डंड-बैठक ५० से १०० तक करना चाहिये। मुगदर हिलाना, डम्बल और जिम्नास्टिक करना चाहिये। इस अवस्था में कुश्ती खूब लड़नी चाहिये। कुश्ती लड़ने से एक-एक हड्डी पर जोर पड़ता है, इसलिये वह और व्यायामों की अपेक्षा बलवर्द्धक होती है।

वृद्धावस्था में व्यायाम कम करना चाहिये। इस अवस्था में अंग-प्रत्यंग ढीले हो जाते हैं, अतएव अधिक व्यायाम करने से हानि पहुँच सकती है। इस अवस्था में प्रातः और सायंकाल खुली हवा में टहलना सबसे उत्तम व्यायाम है।

तेल की मालिश भी एक प्रकार का व्यायाम है। इससे भी खून में गर्मी पैदा होती है। कड़वे तेल की मालिश सर्वोत्तम है। इससे शरीर के छिद्रों का मैल रगड़ से निकल जाता है और चमड़े के कृमि मर जाते हैं तथा शरीर चिकना रहता है। पहलवानों में यह प्रथा अधिक देखी जाती है। प्रत्येक स्कूल के विद्यार्थियों को—चाहे वह जिस आयु का हो—सप्ताह में कम-से-कम दो बार मालिश अवश्य करनी चाहिये। मालिश के पश्चात् साबुन लगा कर स्नान करना चाहिये।

व्यायाम करने का सबसे उत्तम समय प्रातःकाल है। शौच-क्रिया से निवृत्त होकर व्यायाम करने के लिये डट जाना चाहिये। स्नान करके व्यायाम किया जाय तो अच्छा है। यदि व्यायाम के बाद स्नान करना हो तो व्यायाम के समाप्त हो जाने के बाद थोड़ी देर ठहरकर स्नान करना चाहिये। व्यायाम कम-से-कम आधा घंटे तक अवश्य करना चाहिये। भोजन करने के उपरान्त व्यायाम नहीं करना चाहिये।

व्यायाम करने का स्थान खुला हवादार होना चाहिये। वहाँ सफाई खूब रखनी चाहिये, किसी प्रकार की दुर्गन्ध न आती हो। फूलों के कुछ पौधे लगा देना चाहिये या व्यायामशाला के ऊपर लता लगा देनी चाहिये। अगल-बगल थोड़े तैयार गमले भी रख देना चाहिये। भीम, अर्जुन आदि वीरों के चित्र भी टाँगना चाहिये। व्यायाम के स्थान को इस प्रकार सुसज्जित करना चाहिये कि उसे देखकर चित्त की प्रसन्नता हो।

हमारे यहाँ स्त्रियों के लिये भी व्यायाम की व्यवस्था की बड़ी आवश्यकता है। थोड़ा पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ टेनिस खेल सकती हैं, किन्तु साधारण स्त्रियाँ नहीं खेल सकतीं। आज-कल की पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ तो हँसेंगी, किन्तु भारतवर्ष-भर की स्त्रियों के लिये चक्की चलाने की पुरानी प्रथा बहुत ही उपयोगी है। किसानों की स्त्रियाँ कितनी मजबूत होती हैं!

कारण यह है कि वे घर में चक्की चलाती हैं, निराई-बुवाई करती हैं और घर के सब काम-काज अपने हाथों से करती हैं। नगरों की स्त्रियाँ कमजोर होती हैं। वे हाथ से काम नहीं करना चाहतीं, अपनी नौकरानियों से काम करवा लेती हैं। अतएव स्त्रियों को चाहे वे शहर की हों अथवा गाँव की, व्यायाम के लिये उन्हें एक घंटा चक्की रोज चलाना चाहिये।

चाहे स्त्री हो अथवा पुरुष, उसे व्यायाम की उतनी ही आवश्यकता है जितनी आवश्यकता उसे भोजन की है। व्यायाम की बान लड़कपन से डालनी चाहिये। एक बार जब व्यायाम करने का आनन्द आ गया तब लोग व्यायाम आप-से-आप करेंगे।

शरीर में व्यायामरूपी अग्नि न देने से शरीर निकम्मा अतिशून्य और निर्बल पड़ जाता है। जिन खाद्य वस्तुओं से रक्त और बल संचय होना चाहिये वे सड़ने लगती हैं और शरीर में दुर्गन्ध उठने लगती है। शरीर के अन्दर भोजन के सड़ने से दिमाग में बुरे-बुरे विचार उत्पन्न होने लगते हैं और इन्द्रियाँ वश में नहीं रहतीं। बुद्धि और स्मृति भी मन्द हो जाती है और युवावस्था ही में बुढ़ापे के चिह्न दृष्टि-गोचर होने लगते हैं। सन्तान भी रोगी और निर्बल होती है।

अतएव इस मानव-शरीर से यदि आनन्द उठाना है तो इसे व्यायाम द्वारा बलिष्ठ करना प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपना मुख्य कर्त्तव्य समझना चाहिए।

अभ्यास

१—व्यायाम द्वारा भोजन पचाने में कैसे सहायता मिल सकती है?

२—नियमित व्यायाम किसे कहते हैं?

३—व्यायाम कैसे स्थान पर और किस समय करना चाहिये?

जननी जन्मभूमिश्च

[श्री वियोगी हरि]

क्या यही स्वर्ग है ? तब तो छोड़ो ऐसा स्वर्ग ! देवदूत ! तू मुझे अपने उसी मर्त्यलोक में भेज दे ! कर्मलोक का निवासी स्वर्गलोक की कामना नहीं करता। अरे ! मेरी वह निर्जन कुटिया क्या बुरी है ? मुझे अपनी उस मड़ैया में सन्तोष है।

मैं समझ रहा था कि स्वर्ग से कर्म की अनवरत धारा बहती होगी, यहाँ के वासी पारस्परिक प्रेम-सूत्र में बँधे होंगे और वहाँ सच्चरित्रता, सद्व्यवहार एवं सहानुभूति का अटल साम्राज्य होगा। सो वे सब बातें यहाँ कहाँ हैं ? यहाँ का रंग-ढंग तो कुछ निराला ही है। यहाँ सब-के-सब विलास-विभोर, ईर्ष्या-परायण और मदान्ध दीख पड़ते हैं। क्या इन अकर्मण्यों को कोई काम नहीं ? अंगराग लगाना, माला गूथना या चित्रांकन करना ही क्या इन मुफ्तखोरों की इतिकर्त्तव्यता है ? सहकारिता और सहानुभूति तो ये जानते ही नहीं। इनके समान ईर्ष्यालु, लोलुप और स्वार्थी मर्त्यलोक में नहीं। आस्तिकता का तो इन

स्वयं-प्रभुओं ने नाम भी सुना होगा। ये लोग हैं तो दानव पर कहे जाते हैं देव !

देवदूत ! तेरा देव-दुर्लभ स्वर्ग मुझे लुभा न सकेगा ! इन सुरम्य राज-प्रसादों को तो मैं कभी का ठुकरा चुका हूँ। यह उन्मादकारी नन्दभवन मेरे किस काम का ? इन पारिजात पुष्पों का परागपान करने के लिये मेरे सरल सुकुमार अधर पल्लव नहीं। यहाँ परिमलबाही पवन की विलोल लहरों का मैं इच्छुक नहीं। चिन्तामणि तो मेरे लिये कानी कौड़ी का भी मूल्य नहीं रखती। मुझे इस स्वर्ग-विहार से नरक-यातना कहीं अधिक अच्छी लगती है। मैं यहाँ पलमात्र भी नहीं ठहर सकता। यहाँ लोगों के दिन कैसे कटते होंगे ?

मैं अपनी जन्म-भूमि का स्मरण कर अधीर हो रहा हूँ। वह ऊजड़ गाँव, वे ऊसर खेत, टूटी-फूटी झोपड़ियाँ, वह सजल नदी, वह निर्जन वन और वह टेढ़ी-मेढ़ी वन-वीथियाँ आज भी मुझे स्वर्ग से ऊँचा उठा रही है। वे सीधे-सादे ग्रामीण यहाँ कहाँ मिलेंगे। यहाँ न वह हल है, न खुरपी, न जेठ की लू है, न सावन की मूसलाधार वर्षा; न रोना है, न गाना। न रूखी रोटी, न सूखे चने। वहाँ हमलोग हिल-मिलकर रहते हैं ! दूसरे के सुख में सुख और दुःख में दुःख मानते हैं। अहंकार तो हम गरीब जानते ही नहीं। हमलोग ईश्वर से बहुत डरते हैं।

यहाँ की वेश-भूषा लेकर क्या करूँगा ? तन पर एक फटा-पुराना चिथड़ा ही श्रृंगार है और रत्नजटित आभूषण है—स्वातन्त्र्य। जन्मभूमि के कंकड़-पत्थर ही मुझे सुमन-सेज का काम देते हैं। आम और महुए के आगे कल्प-वृक्ष क्या चीज है। मेरे गाँव का एक-एक रजकण तेरी सहस्र चिन्तामणियों से कहीं अधिक मूल्यवान् है।

देवदूत ! मैं एक मनुष्य ही रहना चाहता हूँ, देवता नहीं। यहाँ बसने के लिये बहुत-से निठल्ले मिल जायँगे। कृपाकर मुझे उसी दिव्य-भूमि पर पटक दे जहाँ से तू मुझे प्रमत्त बनाकर उठा लाया है।

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी :

[माता और जन्मभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर हैं]

अभ्यास

१—स्वर्ग और जन्मभूमि की तुलना करो।

२—तुम्हें अपनी जन्म-भूमि क्यों प्यारी लगती है ?

३—निम्नलिखित शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करो—

सद्व्यवहार, विलास-विभोर, ईर्ष्या-परायण, मदान्ध।

४—बीस पंक्तियों में इस पाठ का सारांश लिखो।

———

कबीर-वाणी
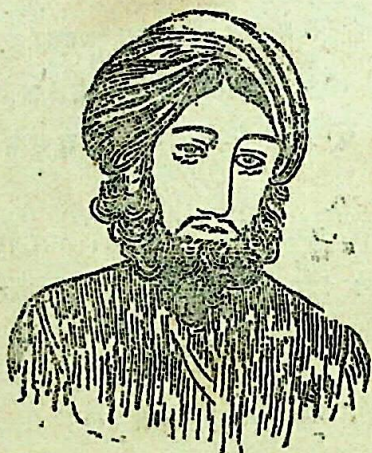
करना था सो क्यों किया, अब करि क्यों पछताय।
बोया पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते खाय ॥१॥

ऊँचे कुल का जन्मिया, करनी ऊँच न होय।
सुवर्न कलस सुरा भरा, साधु निन्दा सोय ॥२॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
अपना मन सीतल करै, औरन को सुख होय ॥३॥

कमोदनी जल पर बसै, चन्दा बसै अकास।
जो जाही की भावना, सो ताही के पास ॥४॥

दोष पराये देखि करि, चला हंसत हंसत।
अपने चित न आवई, जिनको आदि न अंत ॥५॥

निंदक दूर न कीजिए, दीजिए आदर मान।
तन मन सब निरमल करे, बकि बकि आनहिं आन ॥६॥

'कबिरा' घास न निंदिए, जो पावौ तर होय।
उड़िकै परै जो आँखि में, खरा दुहेला होय ॥७॥

कबिरा संगति साधु की, ज्यों गंधी की बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौभी बास सुबास ॥८॥

सुख के माथे सिल परै, नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुःख की पल-पल नाम रटाय ॥९॥

माला फेरत युग गया, गया न मन का फेर।
करका मनका छाँड़ि के, मन का मनका फेर ॥१०॥

मूरख के समझावते, ज्ञान गाँठ को जाय।
कोयला होय न ऊजरो, सौ मन साबुन खाय ॥११॥
गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खाय।
जो आवै सन्तोष धन, सब धन धूर समान ॥१२॥
साँचे साध न लागई, साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै, साँचे माँहि समाय ॥१३॥
प्रेम-प्रीत से जो मिलै, तासों मिलिये धाय!
अंतर राखे जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥१४॥

अभ्यास

१—छठे, आठवें और दसवें दोहों का अर्थ लिखो।

२—निम्नलिखित शब्दों के शुद्ध रूप लिख कर उनके प्रयोग वाक्य में करो—

बरन, सीतल, कमोदनी, निरमल।

एडिसन और फोनोग्राफ

(श्री जगन्नाथ प्रसाद मिश्र)

फोनोग्राफ का आविष्कार हुए आज साठ वर्षों से कुछ अधिक हुए। उस समय एडिसन की उम्र सिर्फ तीस साल की थी। दरिद्र माता-पिता के घर में एडिसन का जन्म हुआ था। उनके पिता एक साधारण कारबारी थे—किसी तरह अपनी छोटी गृहस्थी के दिन चलाते थे। अपने पुत्र की शिक्षा की ओर पिता का ध्यान विशेष रूप से था। छोटी अवस्था में ही वे एक पाठशाला में भेजे गये, किन्तु तीन महीनों के बाद ही उनका पाठशाला जाना बन्द हो गया, क्योंकि उनके पिता मर गये। अब एडिसन की शिक्षा का भार उनकी माता पर पड़ा। एडिसन ने खूब मन लगाकर पढ़ना-लिखना शुरू किया। बारह वर्ष की अवस्था में ही इतिहास और निबंध की कितनी-ही पुस्तकें उन्होंने पढ़ डाली। गणित का विषय उन्हें अच्छा नहीं लगता था। साहित्य की पुस्तकें वे बड़े चाव से पढ़ा करते थे।

थोड़ी उम्र में ही एडिशन का कर्म-जीवन आरम्भ हुआ। शुरू में उन्होंने अखवार बेचने का काम किया। इसके बाद वे डाकखाने में तार बाँटने के काम पर नियुक्त हुए। इसी समय से उनकी विलक्षण प्रतिभा का विकास होने लगा। धीरे-धीरे वे टेलिग्राफ और टेलिफोन के भिन्न-भिन्न कल पुर्जों की अच्छी तरह देख-भाल करने और उन्हें समझने में मन देने लगे टेली-ग्राफ यन्त्र के सामने वैठकर एडिसन सोचा करते, किस प्रकार तेलीग्राफ का संवाद धातुपिंड के ऊपर अंकित किया जा सकता है। उन्होंने एक यंत्र का भी आविष्कार किया—धातु के एक टुकड़े के ऊपर एक सुई की तरह नुकीला तीर लगाया गया। जभी तारयंत्र में संवाद पहुँचता, चुम्वक-शक्ति के प्रभाव से नुकीला तीर हिलने लगता और उससे धातु के टुकड़े के ऊपर बहुत पतली रेखा खिंच जाती। अब उस तीर को रेखा के ऊपर रखकर जब उसके पीछे एक डायफ्राम रक्खा गया तब एडिसन ने देखा कि टेलीग्राफ की लिपी साफ तौर से उसपर अंकित हो जाती है। साधारण टेलीग्राफ में प्रति मिनट सिर्फ ३०-४० शब्द ही आते, किन्तु एडिसन के इस यंत्र में तीन-चार सौ शब्द की पुनरावृत्ति सहज ही संभव होती।

इसके वाद एडिसन को टेलीफोन की बात याद आई। एक स्थान पर यदि कोई बात कही जाती तो शब्द-तरंग लोहे के डायफ्राम पर आघात करके विद्युत-प्रवाह उत्पन करती; उस

विद्युत-प्रवाह की शक्ति से दूर का एक और डायफ्राम हिलने लगता और वही शब्द तरंग उत्पन्न होकर हवा में फैल जाती।

इस प्रकार एडिसन ने अपनी प्रतिभा की बदौलत फोनोग्राफ बनाने की कल्पना अपने मन में पूर्ण कर डाली। अब इस कल्पना को यंत्र की सहायता से वास्तविक रूप देना बाकी रह गया था। उन्होंने अपने प्रिय मित्र क्रुयसी को बुलाया और उसके हाथ में एक नक्शा दिया।

क्रुयसी को यह साधारण यंत्र तैयार करने में देर नहीं लगी। तैयार करके उसने एडिसन से पूछा कि इस यंत्र को लेकर क्या होगा? एडिसन ने जवाब दिया मैं इस यंत्र के द्वारा मनुष्य की बातचीत ग्रहण कर लूँगा और चाहे जब उसकी पुनरावृत्ति कर सकूँगा। यह सुनकर क्रुयसी हँस पड़ा। उसने समझा कि एडिसन मजाक कर रहे हैं। एडिसन को भी इस बात का पूर्ण विश्वास नहीं था कि उनकी यह कल्पना सचमुच सफल होगी। खैर, नवनिर्मित यंत्र को ठीक स्थान पर रखकर एडिसन जोर से बोलने लगे—"तारा के पास एक लालटेन है" इसके बाद उन्होंने सिलिन्डर को घुमाया। ठीक ज्यों-का-त्यों सुना गया—"तारा के पास एक लालटेन है।" एडिसन ने लिखा है—"मैं इस अद्भुत आवृत्ति के लिये बिलकुल तैयार नहीं था। मैं जानता था कि कोई काम एक बार में ही सफल नहीं होता। किन्तु,

यहाँ तो सन्देह करने का भी कोई कारण नहीं दीखता। क्रुयसी तो अवाक् होकर एडिसन की ओर देख रहा था। उस रात दोनों में से किसी को नींद नहीं आई। दोनों मिलकर इस यंत्र की सारी छोटी-मोटी त्रुटियों का संशोधन करने लगे। इसके बाद चीत्कार, गान, हास्य आदि का आरम्भ हुआ। जिसका जैसा कण्ठस्वर था, यंत्र ठीक उसी तरह उसकी पुनरावृत्ति करके सुनाता। लोगों में इस बात को लेकर बड़ी हलचल मच गई। इस प्रकार वर्त्तमान युग के एक श्रेष्ठ आविष्कारक का जन्म हुआ। क्रुयसी का यह यंत्र आज भी लन्दन के साउथ केनसिंगटन म्यूजियम में हिफाजत के साथ रक्खा हुआ है।

अब एडिसन को अमेरिका के विभिन्न स्थानों से यंत्र प्रदर्शित करने का निमंत्रण मिलने लगा। उन्होंने अच्छे ढंग से कई फोनोग्राफ तैयार किये और वाशिंगटन की ओर चल पड़े। वाशिंगटन के नाना स्थलों में फोनोग्राफ की प्रदर्शनी होने लगी। रात में ग्यारह बजे अमेरिका के राष्ट्रपति ने संवाद भेजा कि यदि एडिसन राष्ट्रपति के भवन में आकर अपना यंत्र दिखायें तो बड़ी कृपा हो। एडिसन जब वहाँ पहुँचा तब देखा कि राष्ट्रपति पहले से ही उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। फोनोग्राफ का प्रदर्शन होने लगा। रात में साढ़े तीन बजे एडिसन को वहाँ से छुट्टी मिली।

इतना प्रदर्शन होने पर भी अबतक कुछ लोगों को यह संदेह बना हुआ था कि एडिसन सचमुच मनुष्य के कंठस्वर या उसके मुंह से निकाले हुए किसी भी शब्द को ग्रहण कर रख सकते हैं और इच्छानुसार उसकी पुनरावृत्ति कर सकते हैं। एक दिन एक प्रसिद्ध पादरी एडिसन के परीक्षागार में पहुँचे और पूछा कि फोनोग्राफ मेरे कथन को दुहरा सकता या नहीं ? एडिसन ने फौरन अपने यंत्र पर टीन की नई चादर रखकर पुरोहित से बोलने के लिये कहा। पुरोहित बड़ी शीघ्रता से बाईबिल के वाक्यों को जबानी पढ़ने लगे। एडिसन ने सहज ही हँसते-हँसते पुरोहित के पूरे व्याख्यान की पुनरावृत्ति कर डाली, तब पुरोहित का सारा सन्देह दूर हो गया। उन्होंने कहा कि मैं इस यंत्र से सर्वथा सन्तुष्ट हूँ !
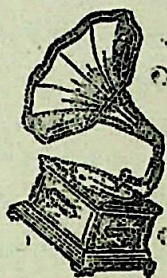
देश-विदेश के समाचारपत्रों में फोनोग्राफ की प्रशंसा छपने लगी। तीस वर्ष के एक युवक की ख्याति सर्वत्र फैल गई। एडिसन के सम्बन्ध में लोगों ने विचित्र प्रकार की कहानियाँ रच डाली। फोनोग्राफ यंत्र को देखने के लिये विभिन्न स्थानों से तकाजे पर-तकाजे आने लगे। आखिर एक कम्पनी खोली गई जिसमें ज्यादा तादाद में यंत्र तैयार करने के लिये बहुत से लोग

काम करने लगे। यंत्र देखने के लिये लोगों की खासी भीड़ लगी रहती। आमदनी भी काफी होने लगी। उधर एडिसन बराबर इस बात की चेष्टा में लगे रहते कि यंत्र में कोई त्रुटि न रह जाय।

लगभग दस साल तक फोनोग्राफ का व्यवहार इस रूप में चलता रहा। फोनोग्राफ का व्यवहार देखकर अब लोगों में पहले-जैसा आश्चर्य का भाव भी नहीं रहा। प्रदर्शन के समय लोगों की भीड़ भी कम होने लगी। किन्तु, एडिसन अपने इस आविष्कार को और उन्नत बनाने में लगे रहे। अब तक टीन की चादर का रेकार्ड बनता था और रेकार्ड के ऊपर भी रेखाएँ खिचती थीं। उनकी गहराई एक इंच के हजारवें भाग से अधिक नहीं होती। टीन के स्थान पर मोम का सिलिंडर लगा दिया गया और एक रेकार्ड से ज्यादा तादाद में रेकार्ड तैयार करने के उपाय भी निकाले गये। एक-एक करके एडिसन ने फोनोग्राफ के सम्बन्ध में ६५ आविष्कारों को पेटेन्ट कराया। उनके अन्तिम यंत्र के साथ समय के यंत्र में नाम मात्र का ही भेद है।

एडिसन ने विचार किया कि जलसों के अवसर पर लोग संगीत का आयोजन करते हैं और गाना सुनना पसन्द करते हैं। फोनोग्राफ में भी गाने के रेकार्ड तैयार किये जा सकते हैं। इसके

लिये बिजली के मोटर-यंत्र की आवश्यकता नहीं, केवल स्प्रिंग द्वारा रेकार्ड को चलाने से ही वह घूमने लगेगा। बस, कम दाम में फोनोग्राफ तैयार होने लगे। उसका प्रचार क्रमशः बढ़ने लगा। इस समय तो उनका फोनोग्राफ ५०-६० रुपये तक में बाजार में बिकता है।

अब तो फोनोग्राफ का व्यवहार आनन्द-उत्सवों में इतना बढ़ गया है कि दूर-दूर के गाँव के लोग भी इससे परिचित हो गये हैं। हम ऐसे लोगों के कंठस्वर सुना करते हैं जो हमसे बहुत दूर हैं और जिन्हें हम बिल्कुल नहीं जानते। हजारों मील दूर पर जो कंठस्वर वायु में ध्वनित होता है उसे हम घर-बैठे इच्छानुसार सुन सकते हैं। इसी प्रकार यदि आज हम प्राचीन युग के ऋषियों की पवित्र वाणी उनके ही कंठस्वर से सुन सकते तो हमें कितना आनन्द प्राप्त होता।

यद्यपि एडिसन के नाम को अमर करने के लिये उनका एक फोनोग्राफ ही यथेष्ट था, फिर भी उन्होंने इस प्रकार के और भी कई अद्भुत यंत्रों का आविष्कार किया।

अभ्यास

१—एडिसन कौन था और उसका इतना नाम क्यों हुआ ?

२—फोनोग्राफ के आविष्कार की कहानी बताओ ?

३—निम्नलिखित शब्दों का वाक्यों में प्रयोग करो—
प्रदर्शक, राष्ट्रपति, यथेष्ट, उत्सव, ।

———

प्रताप-प्रतिज्ञा

[श्री सुदर्शन]

स्थान—कमलनेर का गढ़ : समय—प्रभात

[दरबार लगा हुआ है। पवित्र अग्नि जल रही है, और पुरोहित हवन कर रहा है। हवन-कुण्ड के समीप आसन पर जगमल सिंह हैं। हवन की समाप्ति पर दरबारी खड़े हो जाते हैं।]

पुरोहित—जगमल सिंह, पवित्र अग्नि की ओर देखो।

जगमल सिंह—देख रहा हूँ, महाराज।

पु०—अपनी तलवार को हाथ लगाओ।

जग०—(तलवार को छूता है।)

पु०—कहो, मैं सच्चे राजपूतों की वीर-सभा में प्रतिज्ञा करता हूँ।

जग०—मैं सच्चे राजपूतों की वीर-सभा में प्रतिज्ञा करता हूँ।

पु०—जब तक मेवाड़ देश पर शासन करूँगा।

जग०—जब तक मेवाड़ देश पर शासन करूँगा।

पु०—ब्राह्मण, गो-माता और शरणागत की रक्षा करूँगा।

जग०—ब्राह्मण, गो-माता और शरणागत की रक्षा करूँगा।
पु०—देश-हित का सदा ध्यान रक्खूँगा।
जग०—देश-हित का सदा ध्यान रक्खूँगा।
पु०—मेवाड़ के शत्रुओं के सामने सिर न झुकाऊँगा।
जग०—मेवाड़ के शत्रुओं के सामने सिर न झुकाऊँगा।
पु०—पूर्वजों का गौरव जीवित रक्खूँगा।
जग०—पूर्वजों का गौरव जीवित रक्खूँगा।
पु०—झूठ न बोलूँगा।
जग०—झूठ न बोलूँगा।
पु०—अन्याय न करूँगा।
जग०—अन्याय न करूँगा।
पु०—अपने सुख और लाभ के लिये देश को हानि न पहुँचाऊँगा।
जग०—अपने सुख और लाभ के लिये देश को हानि न पहुँचाऊँगा।
पु०—अगर अपने इन वचनों को पूरा न करो, परमात्मा करे; यह तलवार तुम्हारे शरीर की बोटी-बोटी उड़ा दे, इस अग्नि की ज्वाला तुम्हें जलाकर भस्म कर दे और इस दरबार में से कोई सूरमा तुम्हारी सहायता को आगे न बढ़े। भील सरदार आ गये?

भील स०—मैं उपस्थित हूँ।

पु०—आइये ! तिलक कीजिये।

(भील सरदार आगे बढ़ता है। दरबार से बाजा बजना आरम्भ हो जाता है । एकाएक राजमाता और प्रताप का प्रवेश।)

राजमाता—ठहर जाओ, भील सरदार। शेर की चीज गीदड़ को देने की भूल मत करो।

पु०—राजमाता !.........

राज०—महाराज मैं आपका अभिप्राय पूर्णरूप से समझती हूँ। आप यही कहेंगे कि महाराणा यह निश्चय कर गये हैं कि उनके बाद जगमल सिंह राज-सिंहासन पर बैठाया जाय।

पु०—हाँ। और, ये सब इस बात के साक्षी हैं।

राज०—परन्तु यह अनुचित है।

पु०—(आश्चर्य से) अनुचित !

राज०—जगमल सिंह के निर्बल कन्धे इस उत्तरदायित्व का भार नहीं उठा सकते। अगर इस समय मेवाड़ को वीर राजा न मिला तो इसके बचने की कोई आशा नहीं।

पु०—मगर यह महाराणा की आज्ञा थी, उनकी अन्तिम इच्छा थी।

राज०—देश के सामने महाराजा भी कोई चीज नहीं।

पु०—राजमाता !.......

राज०—महाराज ! आप क्या कर रहे हैं ? जरा सोचिये मेवाड़ क्या था और आज किस अधोगति को प्राप्त हो चुका है ! इसके हरे-भरे खेत उजड़ गये हैं, इसके सुन्दर भवन टूटे हुए खंडहर बन गये हैं, और इसका प्राचीन गौरव भूतकाल की कहानी बन चुका है। मुगल-बादशाह इसकी तरफ लोभ की आँखों से टकटकी लगाये देख रहा है। नहीं, नहीं यह लड़का कुछ न कर सकेगा; देश को इस समय किसी बहादुर बेटे की आवश्यकता है !

जग०—और वह बहादुर बेटा कौन है ?

राज०—उसे मेवाड़ का बच्चा-बच्चा जानता है।

जग०—मगर, उसका नाम ?

राज०—(धीरे से) प्रताप।

प्रताप—नहीं, मैं इस योग्य नहीं हूँ।

जग०—वह कहता है, मैं इस योग्य नहीं हूँ।

राज०—मगर सारे मेवाड़ में यही है, जो मेवाड़ को बचा सकता है।

जग०—क्योंकि आपका बेटा है।

राज०—नहीं, क्योंकि वह सूरमा है। जरा मेरी दशा का ख्याल कर। मैं इस समय मौत के किनारे से बोल रही हूँ और मुझे इस बात की कोई परवा नहीं कि मेरे बाद मेरा लड़का राजसिंहासन पर बैठे या कोई दूसरा आदमी। मगर एक बात की मुझे अभिलाषा है और मरने के बाद भी रहेगी कि इस राजसिंहासन पर कोई ऐसा आदमी बैठ जाय, जिसकी भुजाओं में शक्ति, हृदय में साहस, सिर में बुद्धि और लहू की एक-एक बूँद में पागल बना देनेवाली देश-भक्ति की धुन हो। अगर ये अनमोल गुण 'प्रताप' में न होते तो चाहे देश का एक-एक बच्चा उसे तख्त और ताज का अधिकारी स्वीकार कर लेता परन्तु मैं उस मौत का स्मरण करके—जो मेरी प्रतीक्षा कर रही है, और उन चरणों की सौगन्ध खाकर—जिनके साथ मैं अभी सती हो जानेवाली हूँ कहती हूँ कि सबसे पहले मैं आगे बढ़ती और उसे यह कहकर तख्त से उतार देती कि सावधान, इस

सिंहासन पर पाँव न रखना, नहीं तो माँ का शाप तुझे नष्ट कर देगा।

जग०—ऊँह; ये सब कहने की बातें हैं।

राज०—कमीने लड़के! तुझे अपनी माँ का अपमान करते लज्जा नहीं आती? प्रताप, तू सुन रहा है, जगमल मेरा अपमान कर रहा है।

एक सरदार—राजमाता का अपमान असह्य है, जगमल सिंह! माफी माँगो।

जग०—जगमल की जबान माफी माँगना नहीं जानती।

दूसरा सरदार—तो इसका परिणाम अच्छा न होगा। हम कल की महारानी और आज की राजमाता की शान में कहा गया एक भी कटुवचन नहीं सुन सकते।

जग०—मगर मैं महाराणा हूँ।

तीसरा सरदार—तुम महाराणा नहीं हो। जिसकी जीभ अपने वश में नहीं, जो मान और अपमान की नीति-रीति नहीं जानता, वह देश की नौका को भँवर से क्या बचा सकेगा? यह केवल भ्रम है।

राज०—प्रताप, आगे बढ़कर उसे आसन से उठा दे, असभ्य का स्थान दरबार के अन्दर नहीं, दरबार के बाहर है।

प्रताप—माता, मुझे विवश न करो। मैं राज्य नहीं चाहता।

रा०—मगर राज्य तुझे चाहता है।

प्रताप—(कुछ सोचकर) दरबार की क्या आज्ञा है। महाराणा प्रताप हो या भाई जगमल ?

दरबारी—(चिल्लाकर) प्रताप ! प्रताप !!

एक दो आवाजें—जगमल सिंह !

जग०—दरबार मुझे चाहता है ।

प्रताप—मैं राणा नहीं होऊँगा ।

राज०—नहीं होगा ?

प्रताप—नहीं, कठिन है ।

राज०—मगर क्यों ?

प्रताप सिंह—लड़ाई छिड़ जायगी ।

राज०—तो तू कायर है । मुझे स्वप्न में भी आशा न थी कि तू तलवार की चमक देखकर भय से घर में जा छिपेगा ।

प्रताप—नहीं माता, मैं कायर नहीं हूँ, मैं मौत से नहीं डरता; मगर जरा सोचो, इस समय मेवाड़ के पास वीर पुत्रों का कितना अभाव है, मैं घर की लगाई में उन्हें और भी कम नहीं करना चाहता । जगमलसिंह राणा बन जाय । मैं सिपाही के समान उसके कहने पर अपनी जान तक देश पर निछावर कर दूँगा ।

जग०—वह खुद पीछे हटता है ।

दरबारी—मगर हम नहीं हटने देंगे ।

प्रताप—माता ! मुझे मजबूर न करो, मैं राज्य नहीं चाहता।

राज०—नहीं चाहता ! अगर इस अभागे प्रान्त की भूमि सोना उगलती, इसके खेत लहलहाते होते, इसके शहर आबाद होते, बाजार रौनकदार होते, महल आनन्द विलास के प्रकाश से जगमगाते होते, इसपर दुश्मनों के आक्रमण का भय न होता, इसके आकाश पर विनाश के बादल घिरे न होते तो, मेरे मुँह से ये शब्द कभी न निकलते। मगर आज यह अभागा है, तू भी इसकी सेवा से जी चुराता है, तू आनेवाली विपत्तियों का हाल जानता है। (लम्बी साँस लेकर) बहुत खूब ! जा, मेवाड़ की रक्षा न कर, वह अपनी रक्षा आप कर लेगा। मगर याद रख, सती तुझे शाप देती है, और यह शाप हर समय और हर स्थान में तेरे साथ रहेगा। पर्वतों, शहरों और बयाबानों में........

प्रताप—हे भगवान् !

राज़०—प्रताप, आगे बढ़ ! मेवाड़ तुझे पुकार रहा है। नहीं तो........

प्रताप—खूब समझता हूँ कि सती माँ का शाप मेरे इहलोक और परलोक दोनों को बिगाड़ देगा। मैं

यह समझता हूँ कि मेरी वीर-माता मरते समय मुझसे अप्रसन्न थी, इसलिये मैं सारी आयु के लिये जीवन-आनन्द से वंचित हो जाऊँगा—इस जन्म में कुत्ते की मौत मरूँगा और उस जन्म में बुरी योनि में उत्पन्न होऊँगा। मुझे ये सब स्वीकार है, परन्तु आज देश को वीर पुत्रों की आवश्यकता है, मैं राज्य प्राप्ति के लिये लहू का एक भी बूँद बहाने को तैयार नहीं हो सकता।

जग०—कैसी सच्ची माँ और कितना निःस्वार्थ बेटा! मैं तुम दोनों को प्रणाम करता हूँ। मेवाड़ को तुम पर सदा श्रद्धा रहेगी।

राज०—यह तू कहता है ?

जग०—हाँ माता, यह मैं कहता हूँ! आओ प्रता (आसन से उतरकर) उस आसन पर तुम बैठो। मैं इसके योग्य नहीं हूँ।

राज०—जगमल ! जगमल !!

जग०—आओ भाई प्रताप, मैं अपनी खुशी से यह राज-सिंहासन तुम्हें सुपुर्द करता हूँ।

प्रताप—भाई ·····

जग०—नहीं, मैं नहीं मानूँगा। यह उत्तरदायित्व तुम्हें स्वीकार करना होगा।

राज०—बेटा, तू धन्य है!

प्रताप—जिस राज्य को प्राप्त करने के लिये खून की नदियां बह जाती हैं; भाई-भाई में तलवार चल जाती है, सारी उम्र के लिये बैर हो जाता है, लोग घोर पाप करने को तैयार हो जाते हैं, उसी राज्य को तुमने मुट्ठी में पाकर इस तरह छोड़ दिया, जैसे मिट्टी का तुच्छ ढेला हो। आज तुम कितने महान्, कैसे त्याग वीर मालूम होते हो!

राज०—भारत की भावी सन्तान तुम दोनों पर गर्व करेगी।

(प्रताप आसन पर बैठता है)

पुरोहित—प्रताप सिंह, इस पवित्र अग्नि की ओर देखो!

प्रताप—देख रहा हूँ, महाराज!

पु०—अपनी तलवार को हाथ लगाओ।

(प्रताप तलवार छूता है)

पु०—कहो, मैं सच्चे राजपूतों की वीर-सभा में प्रतिज्ञा करता हूँ।

प्रताप—मैं सच्चे राजपूतों की वीर-सभा में प्रतिज्ञा करता हूँ।

राज०—(बात काटकर) जब तक मेवाड़-भूमि स्वाधीन नहीं हो जाती, इसका प्राचीन वैभव वापस नहीं आ जाता, इसके असहाय पुत्र अपना कर्त्तव्य और मन्तव्य पूर्णरूप से नहीं समझ लेते, इसके अबला पुत्रियों को निर्भयता से देश के एक कोने से दूसरे कोने तक चले जाने का साहस नहीं होता, तब तक महल में आराम नहीं करेगा, थाल में खाना नहीं खायगा, चारपाई पर पाँव नहीं रक्खेगा। कह, यह प्रतिज्ञा करता है ?

प्रताप—यह माँ की प्रतिज्ञा है, बेटा इसे जी-जान से पूरा करेगा।

राज०—मगर यह प्रतिज्ञा बड़ी भयानक है।

प्रताप—माँ का आशीर्वाद इसे आसान बना देगा।

राज०—प्रलोभन तेरे मार्ग में जाल बिछायेंगे।

प्रताप—अपने पुत्र को ऐसा तुच्छ न समझो। यह भीष्म पितामह की प्रतिज्ञा को ताजा कर दिखावेगा।

राज०—मेरा आशीर्वाद आजीवन तेरे साथ रहेगा।

(जाने को उद्यत होती है)

प्रताप—माँ.......

राज०—बस बेटा! अब मुझे न रोको, तेरे पिताजी अकेले घबड़ा रहे होंगे। मैं अभी सती होऊँगी राजपुरोहित! आप अपना काम कीजिये।

(वेग से प्रस्थान)

प्रताप—(चिल्लाकर) चली गई माँ…माँ…

पु०- संसार का यही नियम है। न कोई यहाँ रहा है, न रहेगा। आदमी आता है, अपना खेल खेलकर चला जाता है। धन्य वही है जो अपनी जननी-जन्म-भूमि के लिये कुछ काम कर जाता है। आपकी माँ ने अपनी लीला समाप्त कर दी; अब आप अपने काम की ओर ध्यान दें।

(परदा बदलता है। राजमाता पति की लाश के साथ जलती दिखाई देती है। प्रताप दौड़ता हुआ आता है)

प्रताप—माँ, माँ… (कोई उत्तर नहीं मिलता। माँ आग की ज्वाला में छिप जाती है।) बस चली गई। भगवान्! स्नेह की ये दोनों नदियाँ सूख गईं। इनका स्थान कभी पूर्ण न होगा।

मंत्री—महाराज! शान्ति धारण कीजिये। आपको रोना शोभा नहीं देता। आप महाराणा है, आपको अधीर देखकर प्रजा का क्या हाल होगा?
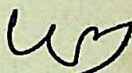
प्रताप—(चौंककर) महाराणा! क्या उसे रोने की भी आज्ञा नहीं? जो एक भिखारी भी कर सकता है, महाराणा

वह भी नहीं कर सकता ? क्या यह शासन, यह राज्य इतना महँगा है ? बहुत अच्छा ! मैं अब न रोऊँगा, ये आँसू देश और जाति के हैं, इन्हें अपने लिये आँखों से बाहर न निकलने दूँगा।

(मन्त्री, दरबारी, सब सिर झुका लेते हैं)

अभ्यास

१—अग्नि के सामने जगमल सिंह ने क्या-क्या प्रतिज्ञाएँ कीं ?

२—राजमाता प्रताप को ही क्यों राणा बनाना चाहती थी ?

३—जगमल सिंह ने क्यों राणा का पद छोड़ दिया ?

४—इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है ?

गीत नं० १५

[श्रीयुत निराला]

जला दे जीर्ण-शीर्ण प्राचीन,
क्या करूँगा तन जीवन-हीन ?

मॉं, तू भारत के पृथ्वी पर,
उत्तम रूपमय माया-तनधर
देवव्रत नटवर पैदा कर,
फैला शक्ति नवीन—
फिर उनके मानस-शतदल पर
अपने चारु चरणयुग रखकर
खिला जगत तू अपनी छवि में
दिव्य ज्योति हो लीन।

अभ्यास

१—इस कविता का भावार्थ लिखो।
२—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ और वाक्यों में प्रयोग करो—
जीर्ण-शीर्ण, मानस-शतदल, चरणयुग।

———

मेरे परिवार की कहानी

[श्री शुकदेव नारायनण]

मेरा नाम पृथ्वी है। मेरे आठ भाई हैं और एक पिता। पर माँ नहीं है। मेरी माँ पहले भी नहीं थी। मेरे देश का नियम तुम्हारे देश से भिन्न है। तुम्हारा देश क्या है, एक छोटा-सा मैदान; क्योंकि तुम्हारा देश और तुम्हारे देश के ही जैसे कितने देश मेरी गोद में बसे हुए हैं। अब तुम लोग सोच सकते हो कि मेरा देश कितना बड़ा होगा।

हम सबके एक पिता हैं। उसी के विशाल शरीर से टूट-टूटकर हम सब की रचना हुई है। तुम्हारे देश में पहले बच्चा होता है, धीरे-धीरे बढ़कर बड़ा होता है। पर मेरे देश में पहले एक बहुत विशाल पिंड बनता है। और, धीरे-धीरे, ठंढा, ठोस और छोटा होता है और इसी समय उसमें से नये-नये पिंड बनते हैं। इस प्रकार मेरा परिवार बढ़ता है।

तुम्हारे देश के लोग लम्बे होते हैं, पर मेरे देश के लोग गोल-मटोल। तुमने कभी 'ग्लोब' देखा है? ग्लोब मेरी मूरत है।
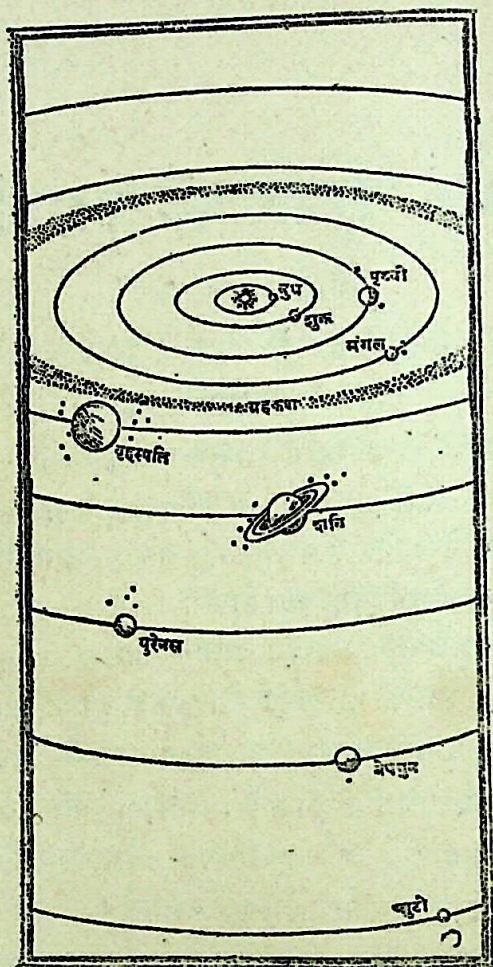
सौर-मंडल

तुमने अपने गुरुजी से सुना होगा कि पृथ्वी नारंगी के समान गोल है। इसी तरह मेरे देश के सब गोल-ही-गोल हैं।

मेरे पिता का नाम सूर्य है। वह उस महादेश का सम्राट् भी है, जिसमें हम भाई-बहिनें तथा हमारे बाल-बच्चे रहते हैं। उस राज्य का नाम सौर-मंडल है। उसमें बड़े-बड़े पिंड 'ग्रह' एवं ग्रहों से बने तथा नन्हें-नन्हें और पिंड 'उपग्रह' कहलाते हैं। मैं अपने आठ भाइयों के साथ 'ग्रह' कहलाती हूँ और हमारी सन्तानें 'उपग्रह'।

हमसब 'ग्रह' और 'उपग्रह' अपने राज्य के राजा सूर्य की परिक्रमा करते रहते हैं। हम सबके चलने की राहें अलग-अलग हैं। ये सब गोल हैं। इन्हें कक्षा कहते हैं। हमसब अपनी अलग-अलग कक्षा पर रात-दिन घूमते रहते हैं। रात-दिन इसी पर घूमते हुए हम सूर्य की परिक्रमा करते हैं; किंतु सूर्य एक ही स्थान पर खड़ा होकर हमारा काम देखता है। हम-सब उसके राज्य को छोड़कर बाहर नहीं जा सकते। वह एक मजबूत रस्सी से हमें कसकर बाँधे हुए हैं। यह मजबूत रस्सी 'आकर्षण-शक्ति' के नाम से मशहूर है। सूर्य मुझसे भी कई गुने बड़े-बड़े ग्रहों को अपने चारों ओर इसी आकर्षण की रस्सी से घुमाता रहता है और इसीके द्वारा उन्हें अपने राज्य से भागने से रोकता भी है। भला कहो तो सूर्य कितना शक्तिशाली है ? यही

क्यों वह इतना बड़ा भी है कि मुझ-जैसी अगर तेरह लाख पृथ्वियाँ और इकट्ठी हो जायँ तो सूर्य के बराबर होंगी! और, यह सूर्य मुझसे नौ करोड़ तीस लाख मील दूर है! लेकिन सिर्फ बड़ा होने ही से क्या, सूर्य का वजन बहुत कम है; क्योंकि उसमें गर्मी ज्यादा है। उसका पिंड भाप का बना हुआ है। इसीलिये इतनी दूर होने पर पर भी गर्मी के दिनों में वह तुम्हें तबाह कर देता है। मेरे देश के कुल पिंड उस सूर्य से गर्मी पाते हैं।

सौर-मंडल का सबसे छोटा ग्रह— अथवा यों कहो कि सूर्य का सबसे छोटा लड़का—'बुध' है! माँ-बाप अपने सबसे छोटे लड़के को बहुत प्यार करते हैं। इसी कारण वह बुध को अपने निकट ही रखता है। बुध सदा सूर्य के निकट-ही-निकट चक्कर देता है। सूर्य इस डर से उसे अपने निकट रखता है कि उसकें बड़े साम्राज्य में उसका यह नन्हा लड़का कहीं भटक न जाय। अगर सचमुच ही बुध अपने स्थान से बाहर निकले तो विशाल-विशाल ग्रह—शनि और बृहस्पति—बेचारे को अपना चक्कर लगवाते-लगवाते मार डालेंगे। पर तुम बुध को जब-तक देख नहीं सकते। सूर्य को शक है कि उसके नन्हें-बच्चे को कहीं दीठ न लग जाय। लेकिन कभी-कभी थिरकता-थिरकता 'बुध' सूर्य के प्रकाश से कुछ अलग आ ही जाती है। ऐसे समय में शाम को, सूर्य डूबने से कुछ ही पीछे, पश्चिम में वह दिखाई

देता है। ऐसा होने का कारण यह है कि बुध की कक्षा गोल नहीं है, अंडाकार है। इसलिए जब वह घूमते-घूमते अपने उस किनारे पर जाता है जो सूर्य के तेज से दूर है, तब वह दिखाई देता है।

बुध बहुत ही छोटा ग्रह है! इक्कीस बुधों को मिलाकर तुम एक पृथ्वी बना सकते हो; पर ऐसा तो तुम नहीं कर सकोगे। अच्छा, अगर तुम एक हाथ गहरे मटके को सूर्य मानों, तो एक सरसों के दाने बराबर बुध होगा! 'बुध' सूर्य की गोद में है; पर वैसा नहीं, जैसे तुम अपने माँ-बाप की गोद में रहते हो। वह सूर्य के भीतर है। सूर्य से उसकी दूरी तीन करोड़ छः लाख मील है। मैं ३६५ दिनों में सूर्य की परिक्रमा कर लेती हूँ। पर बुध को इतने दिन नहीं लगते। उसे सूर्य की परिक्रमा करने में केवल अठासी दिन लगते हैं। इस कारण बुध का एक वर्ष अठासी दिनों में हुआ है। बुध की चाल बड़ी तेज है। मैं सूर्य की परिक्रमा करने के लिए प्रति सेकेंड उन्नीस मील के हिसाब से चलती हूँ, पर बुध एक सेकेंड में तीस मील चलता है। दुनिया में इतनी तेज चलनेवाली कोई चीज नहीं है। इसी कारण यूनानियों ने बुध को 'सूर्य का दूत'—मर्करी—कहा है।

बुध के बाद 'शुक्र' की कक्षा है। शुक्र घूमता-घूमता जब मेरे

बहुत निकट चला आता है, तब उसकी दूरी मुझसे ढाई करोड़ मील रहती है। तुम गर्मी के दिनों में दक्षिण की तरफ सूर्यास्त के बाद एक खूब चमकता हुआ तारा देखते होगे। वही शुक्र है। जाड़े में भोर का तारा तुमने देखा है। वह बिलकुल सामने दिखाई देता है वह शुक्र ही है। वह गर्मी में शाम को और जाड़े में भोर को दिखाई देता है। गाँव के लोगों के पास 'जगौन घड़ी' तो होती नहीं। उनके लिए यह काम मुर्गे और तारे करते हैं। भोर होना वे शुक्र तारे से जानते हैं। यह शुक्र मुझसे तनिक छोटा है। उसे सूर्य का चक्कर देने में २५२ दिन लगते हैं। बतलाओ, उसका साल कितने दिनों का हुआ?

शुक्र के बाद मेरी कक्षा है। तुम रात में सोते हो, दिन में खेलते हो। पर ये रात-दिन होते क्यों हैं? बात यह है कि मैं सूर्य का चक्कर देते वक्त अपना चक्कर भी देती जाती हूँ। जैसे लट्टू अपनी कील पर घूमता है, वैसे ही मैं भी अपनी कील पर घूमती हूँ और साथ-साथ सूर्य का चक्कर भी देती हूँ। जब मेरा एक भाग सूर्य की ओर आता है तब दिन होता है और दूसरी ओर रात बनी रहती है। फिर चौबीस घंटों के बाद रात और दिन होते हैं। मतलब कि मुझे अपना चक्कर देने में इतना समय लगता है। पर बुध और शुक्र के साथ ऐसी बात नहीं है। वहाँ सदा एक ओर प्रकाश तथा

दूसरी ओर अन्धकार बना रहता है। कारण, बुध और शुक्र अपना चक्कर नहीं देते।

मेरे बाद 'मंगल' की कक्षा है। शुक्र की तरह मंगल को भी तुम देख सकते, पर शुक्र की तरह शीघ्र ही इसे पहचान नहीं सकते। यह जाड़े की रात में सर के ऊपर दिखाई देता है। देखने में यह लाल है। आठ बजे रात में जरा पूरब हटकर और पाँच बजे भोर में ठीक सर के ऊपर, दो तारे पास पास दीखते हैं, उनमें लाल को 'मंगल' मानना। मंगल का आकार मुझसे छोटा है। चार मंगल मिलकर एक पृथ्वी बना सकते हैं। वजन तो उसका और भी कम है। नौ मंगल तौल में मेरे बराबर होंगे। हाँ, मेरी तरह मंगल में भी रात दिन होते हैं। लोगों का ख्याल है कि मंगल में प्राणी रहते हैं मंगल के बुद्धिमान प्राणियों ने वहाँ बहुत-सी नदियाँ और नहरें काटकर बना रक्खी हैं, क्योंकि वहाँ का आकाश मेघ शून्य है। वहाँ बादल है ही नहीं, जो वर्षा हो। वहाँ की धरती में भी जल नहीं है। पर वहाँ समुद्र है। उससे लोगों ने नहरें काट रक्खी हैं। किन्तु वहाँ बुद्धिमान प्राणी होंगे भी, तो तुमलोगों जैसे मौज से नहीं रहते होंगे; क्योंकि वहाँ पानी की कमी रहती होगी। समुद्र का पानी बर्फ के पिघलने पर उनकी नहरों में आता होगा। वहाँ के आदमी भी विचित्र होते होंगे।

कलकत्ते के एक हिन्दी-मासिक में वहाँ के आदमियों के चित्र छपे थे। उनका सिर हाथी-जैसा था, पेट बड़ा-सा निकला था, हाथ-पाँव छोटे थे। गणेशजी जैसा ही समझ लो; पर इन बातों की सच्चाई भगवान जाने। जो हो; मंगल अपनी कक्षा पर चलता हुआ ६८७ दिनों में सूर्य की परिक्रमा करता है। इसका वर्ष मेरे एक वर्ष ग्यारह महीनों के बराबर हुआ। मंगल की कक्षा बड़ी है—एक तो यह कारण हुआ जिससे इसे सूर्य की परिक्रमा में देर लगती है, और दूसरा कारण है कि यह एक सेकेंड में केवल १५ मील ही चलती है।

मंगल के बाद 'बृहस्पति' की कक्षा है मंगल तथा बृहस्पति की कक्षाओं के बीच में बहुत स्थान है। इसमें छोटे-छोटे पिंड भरे पड़े हैं, जो ग्रहों के झाड़ने से बने हैं और 'ग्रहकणिका' कहलाते हैं। इसके बाद बृहस्पति का राज्य है। बृहस्पति बहुत ही मोटा है। सूर्य के राज्य में सबसे विशालकाय यही है। यह मानों ग्रहों का राजा है, सूर्य तो पिता हैं। तुमने कथा में गुरु 'बृहस्पति' का नाम सुना होगा। यूनानी भी इसे ग्रहों का गुरु ही मानते आये हैं। इसका पेट इतना बड़ा है कि मुझ-जैसी तेरह सौ पृथ्वियों को यह आसानी से भकोस जा सकता है! पर भारी यह मुझसे तीन सौ गुना ही अधिक है! कारण, इसका पिंड वाष्पीय द्रव्यों का बना हुआ है। जैसे—मोटा आदमी

तेज नहीं दौड़ सकता है, वैसे ही यह एक सेकेंड में केवल आठ मील ही चल सकता है। इस कारण सूर्य की परिक्रमा करने में इसे पूरे बारह वर्ष लगते हैं। अब कहो, इसका एक वर्ष कितने के बराबर हुआ? पर ध्यान रहे कि वह अपना चक्कर बहुत ही शीघ्र दे लेता है। इसे अपना चक्कर देने में केवल दस घंटे लगते हैं। इसलिये इसके दिन-रात का परिणाम दस घंटों के बराबर हुआ। मोटे तौर से वहाँ पाँच घंटों का दिन और उतनी ही बड़ी रात होगी। फिर भी बृहस्पति के आठ चाँद हैं; लेकिन सब बराबर नहीं हैं—चार बड़े हैं, चार छोटे। बड़े चाँद की पूनो-अमावस तुम्हारे चाँद जैसी ही होती है।

बृहस्पति की कक्षा के बाद 'शनि' की कक्षा है। शनि सब ग्रहों में निराला है। पहिया-जैसी उथले पदार्थ के बीच में यह बैठा दिखाई देता है। लेकिन इसकी देह से इस चक्र का कोई सम्बन्ध नहीं है। यह आकार में केवल बृहस्पति से छोटा है। इसकी कक्षा बहुत बड़ी है, और चाल बहुत धीमी। यह प्रति सेकेंड छः मील चलकर सूर्य की परिक्रमा कर पाता है। इसे सूर्य की परिक्रमा करने में तीन वर्ष लगते हैं। पर अपनी कील पर यह केवल दस घंटे चौदह मिनटों में घूम जाता है। इसे सूर्य से बहुत ही कम प्रकाश मिलता है—जितना प्रकाश तुम्हें मिलता

है, उसका एक बटा-नब्बे भाग कम। फिर भी निजी गर्मी के कारण यह बहुत ही प्रकाशवान् है। इसके चारों ओर एक नहीं, तीन चक्र हैं। ये चक्र लाखों जड़-पिंडों से बने हैं। ये जड़ पिंड बहुत ही छोटे-छोटे हैं। थोड़े-से तुम्हारे फुटबॉल से बड़े भी होंगे। ये सब तीन भागों में बँटकर इसकी परिक्रमा कर रहे हैं।

शनि के चाँदों की कमी नहीं है। इसके पास दस चाँद हैं। इसका एक चाँद 'टाइटन' एक छोटे ग्रह के ही बराबर हैं। हाँ, इसके दो-एक चाँद तुम्हारे चाँद से छोटे भी हैं। इसका एक चाँद बड़ा विचित्र है। तुम जानते हो, सूर्यमंडल में जितने ग्रह-उपग्रह हैं, सब पश्चिम से पूरब को घूमते हैं। पर इस चाँद की गति निराली है। यह शनि के नौ चाँदों के विपरीत दिशा में घूमता है। मालूम होता है, यह शनि का बन्दी है। सूर्यमंडल में बेचारा धोखे से आ गया होगा। तब से शनि इसे अपने यहाँ घुमा रहा है। यह जोरों से भागता है; पर शनि एक बार अपनी आकर्षण की रस्सी से इसे निकट खींच लेता है।

शनि के बाद 'अरुण' की कक्षा है। अरुण की कक्षा बहुत बड़ी है, पर चाल बड़ी धीमी। यह एक सेकेंड में चार मील चलता है। इस कारण सूर्य का चक्कर लगाने में इसे चौरासी वर्ष लगते हैं। इसके दिन-रात दोनों मिलकर नौ घन्टे के बराबर

होते हैं। इसके चार चाँद हैं। इसका सबसे बड़ा चाँद तुम्हारे चाँद से छोटा है।

अरुण के बाद 'वरुण' का राज्य है। यह १६५ वर्षों में सूर्य का चक्कर लगाता है। अगर इसपर आदमी रहें तो उसे ज्यादा-से-ज्यादा एक ही वर्ष जीना पड़े। इसकी चाल एक ही सेकेंड में साढ़े तीन मील है। यह सूर्य से बहुत दूर है। वहाँ सूर्य की रोशनी उतनी मिलती होगी, जितनी तुम्हें चाँद की रोशनी मिलती है। इस बेचारे के एक भी चाँद नहीं है।

वरुण के बाद 'प्लुत' का स्थान है। यह शायद सौर-मण्डल की अन्तिम सीमा पर रहता है। इसका हाल नया-ही-नया मालूम हुआ।

मेरे परिवार की कहानी खत्म हुई। जब तुम बड़े होगे, इस सम्बन्ध में बड़ी-बड़ी किताबें पढ़ोगे और आज से कहीं अधिक समझोगे।

अभ्यास

१—पृथ्वी के कितने भाई हैं और कौन-कौन ?

२—मंडल के बारे में तुम क्या जानते हो ?

३—'सौर-मंडल' कैसा शब्द है ?

———

प्रोत्साहन

[श्री शांतिप्रिय द्विवेदी]

धरित्री के रंगमंच पर, आकाश-मंडल के नीचे, अनादि काल से अविरत जीवन-संग्राम छिड़ा हुआ है; प्रत्येक नवयुवक को उसमें सम्मिलित होने का निमन्त्रण है।

आओ, जीवन-संग्राम में आओ, अपने उत्साह और साहस से आगे बढ़ो। तुम्हारे हृदय में जन्मकाल से ही उत्साह, साहस, बलवीर्य और प्रतिभा विद्यमान है, क्योंकि जन्म की ही तरह ये भी प्रत्येक को देवता की देन है। तुम्हें दूसरों से उत्साह और साहस की भीख माँगने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि वे तुम्हें जन्मतः प्राप्त! यदि तुम दूसरों के उत्साह के भरोसे रहोगे, तो तुम्हें जीवन-संग्राम में पग-पग पर निराश की कठोर यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। अतः अपनी क्षमता से आगे बढ़ो, संसार न तुम्हारे आगे बढ़ने में सहायता देगा और न उत्साह, वह तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी जो ठहरा!

यह भी याद रक्खो कि तुम्हें पथ पर अग्रसर होते देखकर दुनिया तुम्हारी ओर अपनी कानी उँगली उठा सकती है—वह तुम्हारी हँसी भी उड़ावेगी और प्रशंसा भी करेगी, किन्तु उसकी निन्दा-स्तुति में कुछ तथ्य नहीं रहेगी।

एक उदीयमान उत्साही चित्रकार ने जब प्रथम चित्र बनाया तब उसे यह जानने की बड़ी लालसा हुई कि दुनिया इसके बारे में अपनी क्या राय रखती है। अतः, इस चित्र की दो प्रतियाँ तैयार की, एक प्रति वह नगर के चौराहे पर चिपका आया और उसके नीचे यह लिख दिया कि जिन सज्जनों को इस चित्र में जहाँ-जहाँ त्रुटियाँ दिख पड़े, वहाँ-वहाँ वे पेन्सिल से चिह्न कर दें। दूसरी प्रति उसने अपने ही पास सुरक्षित रख छोड़ी। जब शाम को चौराहे पर पहुँचा तब देखता है कि चित्र का कोना-कोना पेन्सिल के चिह्नों से भर गया है, चारों तरफ त्रुटियाँ-ही-त्रुटियाँ दिखाई गई हैं ? बेचारा बड़ा हतोत्साह हुआ, सोचा—मैं तो सफल चित्रकार न हो सकूँगा। देर तक विचार में डूबा रहा, अन्त में न जाने क्या समझकर उठा और वह दूसरी प्रति भी चौराहे पर ले जाकर चिपका दी। इस बार उसके नीचे यह लिख दिया—"इस चित्र में जहाँ-जहाँ दर्शकों को खूबियाँ दीख पड़े कृपया वहाँ-वहाँ चिह्न लगा दें।" घंटों बाद जब वह फिर चौराहे पर पहुँचा तब देखता है कि खूबियों के चिह्न से

वह चित्र रंग गया है? हँसते हुए वह घर लौटा। मन-ही-मन वह कहने लगा—"वाह! कैसी है दुनिया!!—बुरे में भला देखती है और भले में बुरा भी!"

इसी प्रकार, संसार तुम्हारे प्रत्येक कर्म, तुम्हारी प्रत्येक प्रगति की ओर दृष्टिपात करेगा, अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें भला-बुरा कहेगा; किन्तु तुम्हें न तो उससे उत्साहित ही होना चाहिये और न हतोत्साह; क्योंकि वह तुम्हारी त्रुटियों और विशेषताओं का ठीक-ठीक परिज्ञान तुम्हें न करा सकेगा। तुम्हें अपने भले-बुरे का ज्ञान स्वयं रखना होगा—इसके लिये बराबर आत्म निरीक्षण करते रहना चाहिये।

तुम्हारे जीवन-संग्राम के पथ में विपत्तियों की बड़ी-बड़ी चट्टानें आवेंगी। किन्तु, वे तुम्हें विचलित करने के लिये नहीं, बल्कि तुम्हारे धैर्य, साहस और उत्साह के परीक्षण के लिये उन्हें बढ़ाने के लिये। विपत्तियों को हँसते हुए बुलाओ और उनकी प्रतिद्वन्दिता के लिये अपने-आप में अधिकाधिक दृढ़ता उत्पन्न करो, इसी में तुम्हारी कर्मवीरता है। याद रक्खो कठिनाइयों का बढ़ना ही सफलता के समीप पहुँचाने का प्रधान चिह्न है।

अमेरिका के हबशियों के सुप्रसिद्ध टस्केंजी-महाविद्यालय के निर्धन संस्थापक स्वर्गीय 'बुकर टी० वाशिंगटन' महोदय ने

महान् उन्नति का रहस्य यही था कि वे विपत्तियों का स्वागत करने के लिये सदा आतुर रहते थे। घोर-से-घोर विपत्ति, बड़ी से-बड़ी निराशा, उन्हें उनके निश्चित कर्त्तव्य-पथ से विरत नहीं कर सकती थी। जिन दिनों, बड़ी दौड़-धूप के बाद प्राप्त धन से, महाविद्यालय का भवन बन रहा था, उन दिनों वे बार-बार प्रसन्न हृदय से सुनते थे—आज इमारत का अमुक अंश गिर पड़ा। कई बार लोगों को यह भी संदेह हो गया कि कभी यह इमारत बनकर ऐसे रूप में आ सकेगी या नहीं, जिसमें गरीब हब्शियों के बच्चे बैठकर अपनी जीवन-शिक्षा प्राप्त कर सकें। याद नहीं, न जानें कितनी बाधाएँ इस महाविद्यालय के तैयार होने में आई होंगी, किन्तु सभी विघ्न-बाधाओं को अपने ओठों की हँसी में भुलाते हुए, उन्होंने टस्केंजी महाविद्यालय को संसार के एक कोने में खड़ा कर दिया।

यदि इमारत की ईंटें बोल सकतीं तो अपने उस धीर-वीर कष्टसहिष्णु एवं उत्साही संस्थापक की कठिनाइयों का इतिहास सुनतीं। गरीब हबशियों के इस महाविद्यालय ने जिस दिन आकाश की ओर अपनी गर्दन उठायी, उस दिन अमेरिकावासी गोरे चकित हो गये—'क्या हबशी लोग भी इतना पुरुषार्थ कर सकते हैं ?' किन्तु उन्नति का पथ किसी जाति या व्यक्ति-विशेष के लिये सुरक्षित तो है नहीं, वह सार्वजनिक है। चाहे

छोटा हो या बड़ा, गरीब हो या धनी, जो भी उत्साह, साहस और आशा लेकर जीवन-संग्राम में आवेगा, अवश्य आगे बढ़ेगा।

मनुष्य तो मनुष्य ही है, लगन, दृढ़ता, उत्साह और साहस तो छोटे-छोटे जीव भी नहीं छोड़ना चाहते, बिना इसके जीवन का क्रम चल ही नहीं सकता। हम नित्य देखते हैं—चींटी के छोटे-से घर को पैरों से चाहे जितनी बार बिगाड़ा जाय, पर वह उसे आखिर दम तक बनाकर ही छोड़ेगी। यदि ऐसी दृढ़ता तुममें न हो तो तुम्हें लानत है; क्योंकि तुम जीवन और जाग्रति के अधिनायक नवयुवक हो न!

जीवन-संग्राम में जितने ही अधिक और विकट दुःखद्वन्द्व तुम्हारे सामने आवें, समझो कि उतना ही शीघ्र तुम्हारे अभ्युदय का अरुणोदय होनेवाला है। क्या देखा नहीं है कि प्रभात होने के पूव रात्रि के अन्य तीन प्रहरों की अपेक्षा, कहीं अधिक अन्धकार छा जाता है और यह भी देख लो कि पौधे अन्धकार में ही बढ़ते हैं। विपत्तियों को धैर्यपूर्वक झेलो, उससे घबराना मानों अपने-आपको स्वयं नष्ट करना है। बहादुर और मर्द बनकर सब काम करो।

एक बात और। विपत्तियों को आते हुए दूर से देखकर घबराते ही क्यों हो? एक कवि कहता है—"हृदय में सदा अपनी

सफलता के लिये आशा और विश्वास रक्खो—क्योंकि विजयी वे ही होते हैं जिन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास है। विश्वास और आशा का भी त्याग न करना चाहिये, क्योंकि जिसके हृदय में ये दोनों रहते हैं वह सदा धीर और प्रसन्न रहता है, कठिनाइयों और विपत्तियों का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि निराशा के दिन आवें भी, तो गम्भीर होकर विचारो। तुम देखोगे कि तुम्हारी निराशा तुम्हारी भूल थी। जहाँ तुम निराश होते हो, वहीं दूसरे पर्दे में आशा भी तुम्हारी प्रतीक्षा करती है। केवल तुम्हें पहचानने भर की देर है कि वह जीवन की एक दिशा में है!"

लंदन में एक गायक के गानों की बड़ी धूम थी। उसके गीतों को सुनने के लिये लाखों स्त्री-पुरुष दिन-रात उसे घेरे रहते और उसे अच्छी-सी भेंट नजर करते थे। कुछ दिनों के बाद बेचारा बहरा हो गया—अब वह जो गाना गाता, वेसुरा हो जाता, श्रोताओं ने उसके पास आना छोड़ दिया। बेचारे की जीविका कठिन हो गई। वह जीवन से बड़ा निराश हो गया, और आत्म-हत्या के लिये एक पर्वत पर जा पहुँचा। वहाँ क्षण भर के अन्दर ही उसके हृदय में एक आशा कौंध उठी। उसने विचार किया कि जिन गानों को गा-गाकर मैं धन पाता था, यदि उन्हें छापकर बेचूँ तो कैसा? उसने ऐसा ही किया। और संगीत-प्रेमियों ने उसके मुद्रित गानों को हाथों-हाथ ले लिया।

समझ लो कि निराशा स्वयं कोई चीज नहीं, सोचने-विचारने में वही आशा भी बन सकती है। हृदय को सदा आशामय एवं बलवान बनाये रहो। अपने हृदय में सदा उच्च भावनाओं को विकसित होने दो, निर्बल विचारों को कभी स्वप्न में मत अपनाओ। इतने से ही तुम अपने को जीवन-संग्राम में विजय के योग्य बना सकते हो।

अभ्यास

१—जीवन-संग्राम में विजय पाने का क्या रहस्य है ?

२—स्पष्ट करो कि निराशा आशा का दूसरा नाम है।

३—इन शब्दों के अर्थ बताकर वाक्यों में प्रयोग करो।

आत्मतत्परता, दुःख-द्वन्द्व, कष्टसहिष्णुता।

मैं नहीं चाहता चिर सुख

[श्री सुमित्रानन्दन पन्त]

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख;
सुख-दुख की खेल-मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख ॥१॥

सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूर्ण,
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन ॥२॥

जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव-जग में बँट जावें
दुख-सुख से औ' सुख-दुख से ॥३॥

अविरत दुख है उत्पीड़न
अविरत सुख भी उत्पीड़न,
दुख-सुख की निशा-दिवा में
सोता जगता जग-जीवन ॥४॥

यह साँझ उषा का आँगन,
आलिंगन विरह मिलन का
चिर हास-अश्रु मय आनन
रे इस मानव जीवन का ॥५॥

अभ्यास

१—कवि कैसा जीवन पसन्द करता है ?
२—तीसरे पद का अर्थ स्पष्ट करो ।

हाईस्कूल में

[महात्मा गाँधी]

मैं पहले लिख चुका हूँ कि जब मेरा विवाह हुआ तब मैं हाई स्कूल में पढ़ता था। उस समय हम तीनों भाई एक ही स्कूल में पढ़ते थे। भाई बहुत ऊपर की कक्षा में थे और जिन भाई का विवाह मेरे साथ हुआ वे मुझसे एक कक्षा आगे थे। विवाह का परिणाम यह हुआ कि हम दोनों भाई का एक वर्ष बेकार गया। मेरे भाई को तो और भी बुरा परिणाम भोगना पड़ा। विवाह के पश्चात् वे विद्यालय में रह ही न सके। परमात्मा जाने विवाह के कारण कितने नवयुवकों को ऐसे अनिष्ट परिणाम भोगने पड़ते हैं। विद्याध्ययन और विवाह—ये दोनों बातें हिन्दू-समाज में एक साथ हो सकती हैं।

मेरा अध्ययन चलता रहा। हाई स्कूल में बुद्धू नहीं माना जाता था। शिक्षकों का प्रेम-सम्पादन हमेशा करता रहा। प्रतिवर्ष माँ-बाप को विद्यार्थी की पढ़ाई तथा चाल-चलन के संबंध में स्कूल से प्रमाण-पत्र भेजे जाते। उनमें कभी मेरी पढ़ाई या चाल-चलन की शिकायत नहीं की गई। दूसरी कक्षा के बाद

तो इनाम भी पाये और पाँचवें तथा छठे दर्जों में तो क्रमशः ४) और १०) की मासिक छात्रवृत्तियाँ भी मिली थीं। छात्रवृत्ति मिलने में मेरी योग्यता की अपेक्षा भाग्य ने विशेष सहायता की। ये छात्रवृत्तियाँ सब लड़कों के लिये नहीं थीं केवल सोरठ-प्रान्त के विद्यार्थियों के लिये ही थीं और उस समय चालीस-पचास विद्यार्थियों की कक्षा में सोरठ-प्रान्त के विद्यार्थी बहुत नहीं होते थे।

अपनी ओर से तो मुझे याद है कि मैं अपने को बहुत योग्य नहीं समझता था। यदि इनाम अथवा छात्रवृत्ति मिलती तो मुझे आश्चर्य होता; परन्तु हाँ, अपने आचरण का मुझे बड़ा ध्यान रहता था। सदाचार में यदि चूक होती तो मुझे रोना आ जाता। यदि मुझसे कोई ऐसा काम बन पड़ता कि जिसके लिये शिक्षक को उलाहना दे देना पड़े अथवा उनका ऐसा ख्याल भी हो जाय, तो यह मेरे लिये असह्य हो जाता। मुझे याद है कि एक बार मैं पिटा भी गया था। मुझे इस बात पर तो दुख न हुआ कि मैं पिटा गया; परन्तु इस बात का महादुःख हुआ कि मैं दण्ड का पात्र समझा गया। मैं फूट-फूट कर रोया। यह घटना पहली अथवा दूसरी कक्षा की है।

दूसरी घटना सातवें दर्जे की है। उस समय 'दोरावजी एदलजी गीमी' हेडमास्टर थे। वे विद्यार्थी-प्रिय थे; क्योंकि वे

सबसे नियमों का पालन करवाते, विधिपूर्वक काम करते और काम लेते तथा पढ़ाई अच्छी करते। उन्होंने ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये कसरत, क्रिकेट अनिवार्य करा दिये थे। लेकिन मुझे उनसे अरुचि थी। अनिवार्य होने के पहले तो मैं कसरत, क्रिकेट या फुटबॉल में कभी न जाता था। जाने में मेरा झेंपूपन भी एक कारण था, किन्तु अब मैं देखता हूँ कि कसरत की वह अरुचि मेरी भूल थी। उस समय मेरे ऐसे भ्रमात्मक विचार थे कि कसरत का शिक्षा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं। आगे जाकर मैंने समझा कि व्यायाम अर्थात् शारीरिक शिक्षा के लिये भी विद्याध्ययन में उतना ही स्थान होना चाहिये जितना मानसिक शिक्षा को है।

फिर भी मुझे कहना चाहिये कि कसरत में जाने से मुझे कोई हानि न हुई। इसका कारण है। पुस्तकों में मैंने पढ़ा था कि खुली वायु में घूमना अच्छा होता है। यह मुझे पसन्द आया और तभी से—हाई स्कूल के दिनों से—घूमते जाने की आदत मुझे पड़ गई थी, जो अन्त तक रही। घूमना भी एक प्रकार का व्यायाम ही है, और इस कारण मेरा शरीर थोड़ा बहुत गठीला हो गया।

अरुचि का दूसरा कारण था पिताजी की सेवा सुश्रूषा करने की तीव्र इच्छा। स्कूल बन्द होते ही शीघ्र घर पहुँचकर उनकी

सेवा में जुट जाता, लेकिन कसरत जब अनिवार्य कर दी गई तब इस सेवा में विघ्न आने लगा। मैंने गीमी साहब से अनुरोध किया कि पिताजी की सेवा करने के लिये मुझे कसरत से छुट मिलनी चाहिये, परन्तु वे क्यों छूट देने लगे ? एक शनिवार को सवेरे स्कूल था। संध्या के चार बजे कसरत में जाना था। मेरे पास घड़ी न थी। आकाश में बादल छा रहे थे, इस कारण समय का पता न चला। बादलों से मुझे धोखा हुआ। जब तक कसरत के लिये पहुँचता हूँ तब तक तो सब लोग चले गये।

दूसरे दिन गीमी साहेब ने उपस्थिति देखी तो मुझे अनुपस्थित पाया। मुझसे कारण पूछा। कारण जो था, सो मैंने बताया। उन्होंने उसे सच न माना और मुझपर एक या दो आना (ठीक याद नहीं कितना) जुर्माना हो गया। मुझे इस बात से अत्यन्त दुःख हुआ कि मैं झूठा समझा गया। मैं यह कैसे साबित करता कि मैं झूठ नहीं बोला, पर कोई उपाय नहीं था। मन मसोसकर रह जाना पड़ा। मैं रोया और समझा कि सच बोलनेवाले और सच कहनेवाले को असावधान भी न रहना चाहिये। अपनी पढ़ाई के समय मुझसे ऐसी असावधानी पहली और आखिरी थी। मुझे कुछ-कुछ स्मरण है कि अन्त को मैंने वह जुर्माना माफ करा लिया था।

अन्त को कसरत से छुट्टी मिल गई। पिताजी की चिट्ठी जब हेड्मास्टर को मिली कि मैं अपनी सेवा-सुश्रूषा के लिये स्कूल

के बाद इसे अपने पास चाहता हूँ, तब उससे छुटकारा मिल गया।

व्यायाम की जगह मन घूमना जारी रक्खा। इस कारण शरीर से परिश्रम न लेने की भूल के लिये शायद मुझे सजा न भोगनी पड़ी हो; परन्तु एक दूसरी भूल की सजा मैं आज तक पा रहा हूँ। पढ़ाई में खुशखत होने की जरूरत नहीं—गलत ख्याल मेरे मन में न जाने कहाँ से आ घुसा था, जो ठेठ विलायत जाने तक रहा। फिर, और खासकर दक्षिण अफ्रिका में, जहाँ वकीलों के—और दक्षिण अफ्रिका में जन्मे और पढ़े नवयुवकों के मोती की तरह अक्षर देखे, तब तो बहुत लजाया और पछताया। मैंने देखा कि बेडौल अक्षर होना अधूरी शिक्षा का चिह्न है। अतः मैंने पीछे से अपना खत सुधारने की चेष्टा भी की; परन्तु पक्के घड़े पर कहीं लकीर बन सकती है? जवानी में जिस बात की अवहेलना मैंने की उसे मैं फिर अन्त तक न सुधार सका।

अतः प्रत्येक नवयुवक और युवती मेरे इस उदाहरण को देखकर चेते और समझे कि सुलेख शिक्षा का एक आवश्यक अंग है। सुलेख के लिये चित्रकला आवश्यक है। मेरी तो यह राय बनी है कि बालकों को आलेखन-कला सीखनी चाहिये। जिस प्रकार पक्षियों और वस्तुओं आदि को देखकर बालक

उन्हें याद रखता और आसानी से पहचान लेता है, उसी प्रकार अक्षर को भी पहचानने लगता है और जब आलेखन या चित्रकला सीखकर चित्र इत्यादि निकालना सीख जाता है तब यदि अक्षर लिखना सीख ले तो उसके अक्षर छापे को तरह हो जावें।

अभ्यास

१—शारीरिक शिक्षा को विद्याध्ययन में कौन-सा स्थान मिलना चाहिए ?

२—सच्चे को कभी असावधानी न होना चाहिए—क्यों ! समझाओ।

कोसी बाँध

[श्री जनार्दन]

यदि दुनिया होआंग-हो को चीन का शोक कहती रही है तो वर्त्तमान अवस्था में कोसी को बिहार का अभिशाप हम कह ही सकते हैं। कोसी हँसती है, बिहार रोता है; कोसी गाती है; बिहार कराहता है; और जब कोसी उमड़ती है तो बिहार में विनाश का ताण्डव-नृत्य होने लगता है।

गंगा-यमुना और उत्तर-भारत की दूसरी नदियों की तरह कोसी भी हिमालय से निकलती है। यह हिन्दुस्तान की तीसरी सबसे बड़ी नदी है। प्रारम्भ में इसे सप्तकोसी भी कहते हैं, क्योंकि इसकी मुख्य धारा सात छोटी-छोटी बर्फीली नदियों के मिलने से बनती है। इसकी तीन सहायक नदियाँ—सुनकोसी, अरुण और तामूर —तिब्बत और नेपाल से निकलती हैं। कोसी, का क्षेत्र चौबीस हजार वर्गमील में फैला हुआ है जिनमें दो हजार वर्ग मील ग्लेशियर के अन्दर पड़ता है।

छत्रा के पास कोसी पहाड़ों को छोड़कर समतल भूमि पर आती है। इसके पहले वह लगभग छः मील तक पहाड़ी क्षेत्र

से गुजरती है। गंगा से मिलने के लिये इसे समतल भूमि पर आने के बाद सिर्फ पाँच सौ पचहत्तर मील की दूरी तय करनी पड़ती है। रास्ता छोटा और सीधा है, पर इससे खास फायदा नहीं, वरन् तकलीफ और मुसीबत कुछ अधिक ही बढ़ जाती है।

कोसी की सबसे बड़ी आफत है उसकी धारा, जो हमेशा अपना रास्ता बदलती रहती है और वह भी इतनी तेज और शीघ्रता से कि लोगों को उसके भयंकर खतरों से बचने का अवसर नहीं मिलता। कभी-कभी हठात् पानी तीन फुट तक ऊँचा चढ़ जाता है और लाखों की सम्पत्ति का विनाशकर देता है।

आखिर कोसी की धारा बार-बार बदलती क्या रहती समतल भूमि में आने के पूर्व यह नदी बड़ी तेजी से पहाड़ी क्षेत्र से गुजरती है और अपने साथ रेत, पंक, कूड़ा-करकट बहाकर ले आती है। मैदान में उतरते ही उसकी गति मन्द पड़ जाती है, अपने साथ आनेवाली रेत, पंक आदि को वह अधिक ढो नहीं सकती, वह उसे जमा कर देती है। रेत के ढेर के जम जाने से नदी की तली अपने आस-पास की भूमि से ऊपर उठ जाती है और नदी को अपना रास्ता बदलना पड़ता है। रेत किस परिणाम और कितनी तेजी से जमा होती होगी इसका

अन्दाज कुछ इस बात से चल सकता है कि प्रत्येक सेकेण्ड में कितना पानी छूटता है। संसार-प्रसिद्ध बाँध-निर्माता और विशेषज्ञ श्री जे० एल० सैवेज का कहना है कि प्रति सेकेण्ड में करीब दस लाख क्यूबिट फुट पानी छूटता है, जो होआंग-हो की बराबरी करता है। नतीजा यह होता है कि रेत के जमा होने के कारण घड़ी के पेण्डुलम की तरह नदी की धारा पूर्व और पश्चिम की तरफ मुड़ती गयी है और आजकल इसके कारण बिहार की करीब तीन हजार वर्गमील भूमि और नेपाल की करीब पाँच सौ वर्गमील भूमि रेत से भरकर बेकार हो गई है।

कोसी ने यदि बरबादी न की होती तो आज जिस अन्न संकट का सामना बिहार को करना पड़ रहा है वह नहीं करना पड़ता और अपनी आबादी को खिलाने के लिये उसे विदेश और दूसरे राज्यों का मोहताज नहीं होना पड़ता। इतना ही नहीं, जब कभी यह उन्मादिनी नदी अपनी धारा बदलती है, हजारों गाँव तबाह और बरबाद हो जाते हैं, हजारों मील उपजाऊँ जमीन नष्ट हो जाती है और साथ ही साथ कोसी-प्रदेश मलेरिया तथा दूसरे संक्रामक रोगों का शिकार बन जाता है।

कोसी से दूसरी सबसे बड़ी क्षति हमारी जनशक्ति को पहुँच रही है। धारा की अस्थिरता के कारण उत्तर-बिहार के

अधिकतर स्थान गढ़ों से भर गये हैं। जिनमें बाढ़ का पानी जमा रह जाता है। ऐसे पानी में मच्छड़ों को फूलने-फलने का बड़ा अनुकूल अवसर मिलता है। आज कोसी क्षेत्र के अन्तर्गत शायद ही ऐसा कोई घर मिलेगा जहाँ मलेरिया के एक-दो रोगी दिखाई न पड़ें। प्रतिवर्ष हजारों आदमी असमय ही सभी तरह के अभावों में काल के गाल में समा जाते हैं। स्थिति की भयंकरता का पता इससे भी लगाया जा सकता है कि कोसी क्षेत्र में जनसंख्या प्रति वर्गमील नौ सौ होते हुए भी अस्वास्थ्यकर जलवायु के कारण खेती-बारी का काम भी अच्छी तरह नहीं हो पाता और इसलिये उपज भी क्रमशः कम होती जा रही है। उपज की कमी के कारण जन-साधारण को खराब और घटिया खाद्य सामग्री पर निर्भर रहना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक साल इलाके में हजारों आदमी संक्रामक रोगों के शिकार होते रहते हैं। फलतः देश की श्रम-शक्ति और उत्पादन-शक्ति को इतना अधिक नुकसान पहुँचता है कि उसका ठीक-ठीक अन्दाज लगाना विशेषज्ञों के लिये मुश्किल हो रहा है।

धारा के अत्यन्त तीव्र होने तथा बार-बार गति बदलने के कारण यह नदी नावों और जहाजों के चलाने लायक नहीं रह गई है। कभी तो बाढ़ आती है और हठात् रेत के ढेर जमा हो जाते हैं और फिर कभी बाढ़ का दूसरा वेग आता है और

ढेरों के स्थान पर गढ़े बन जाते हैं जिनका पता भी किसी को नहीं चलता। ऐसी हालत में नावों और जहाजों का चलना खतरे से खाली नहीं।

नदी में बाढ़ आने के कुछ पहले ही उस इलाके के हरे-भरे पेड़ सूख जाते हैं। लोगों को इससे आनन्द मिल जाता है कि शीघ्र ही भयंकर बाढ़ आनेवाली है। उनका खयाल है कि सतह पर पानी आने के पूर्व ही बाढ़ का पानी अन्तर्धारा में वृक्षों की जड़ों में पहुँच जाता है और यह पानी उनके लिये कुछ ऐसा जहरीला होता है कि वे तुरत सूख जाते हैं। बात आश्चर्य-जनक जान पड़ती है, पर सच है और आज हरा-भरा उत्तर-बिहार, जो बिहार का बाग कहलाता है, उजड़ रहा है। नील नदी में स्नान करने से जिस प्रकार मिस्रवासियों को एक तरह की बीमारी हो जाती है जिसके कारण वे धीरे-धीरे दस-पन्द्रह वर्ष के भीतर मर जाते हैं, इस तरह की बीमारी या और कोई बीमारी तो कोसी में स्नान करनेवाले व्यक्तियों को नहीं होती, फिर भी कोसी में स्नान करने के लिए लोगों के हृदय में उत्साह नहीं पाया जाता। कोसी के प्रति उसके तट-वासियों का कोई प्रेम नहीं दिखाई पड़ता—शायद ऐसा उसके विनाशकारी कार्यों के कारण ही होता हो।

कोसी के उपद्रवों का इलाज करने का विचार जनता के हृदय में उठने लगा और सन् १९३७ में पटना के बाढ़-सम्मेलन

में डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने बाँध बनाने का एक सुझाव सबसे पहले उपस्थित किया था। नेपाल राज्य में प्रवेश और स्थल-परीक्षण की सुविधाएँ नहीं मिलने के कारण यह विचार कुछ आगे नहीं बढ़ सका। काँग्रेस मंत्रिमंडल के इस्तीफा दे देने के कारण बात जहाँ की तहाँ रह गई। पर, सन् १९४६ से इस क्षेत्र में फिर काम प्रारम्भ हुआ और इस ओर काफी प्रगति भी हो चुकी है। नेपाल सरकार भी बाँध-निर्माण के कार्य में सहयोग दे रही है। अप्रैल में जो कोसी-बाढ़-पीड़ित जनता का सम्मेलन हुआ था उसमें केन्द्रीय सरकार के दो सदस्यों ने भी भाग लिया था। इन लोगों ने इस बाँध-निर्माण-योजना पर पूरी आशा प्रकट की। बाँध-निर्माण-सम्बन्धी प्रारम्भिक जाँच-पड़ताल समाप्त हो चुकी है और काम में हाथ लगाया जा चुका है।

यह बाँध संसार में सबसे बड़ा बाँध होगा और साढ़े सात सौ फुट ऊँचा होगा। अभी संसार का सबसे ऊँचा बाँध संयुक्त राष्ट्र अमेरिका का 'बालडर बाँध' है। यह बाँध उससे भी पचास फुट अधिक ऊँचा होगा। इसको तैयार करने में नब्बे करोड़ रुपयों से ज्यादा खर्च होंगे और करीब दस वर्ष का समय लगेगा। यह करीब १,९०,००,००० क्यूबिक फुट पानी जमा रख सकेगा। बाँध-स्थल पर बिजली के यंत्रों के द्वारा जो बिजली उत्पन्न की जायगी उसकी शक्ति अठारह लाख किलोवाट होगी।

बिजली उत्पन्न करनेवाला यह कारखाना संसार के सबसे दो बड़े कारखानों में एक होगा। इस कारखाने की शक्ति 'ग्रैंड कूाउले' के बराबर होगी, जिसकी बिजली उत्पन्न करने की शक्ति भी इतनी ही है।

इस बाँध के पीछे नेपाल राज्य की जो जमीन है वह जलप्लावित हो जायगी। पर इसके तैयार होने से जो फायदा होगा वह नुकसान से कहीं अधिक होगा। इससे नेपाल में दस लाख एकड़ भूमि की सिंचाई होगी और बिहार में बीस लाख एकड़ भूमि की।

उत्तर-बिहार में कोयले की कमी के कारण औद्योगिक विकास में जो बाधा हो रही है, बिजली-उपयोग उन्हें दूर कर देगा। दरभंगा, मुजफ्फरपुर, कटिहार आदि के जूट और दूसरी मिलों में बिजली का उपयोग किया जायगा। समस्तीपुर के रेलवे कारखानों में, नौगछिया के तेल और चीनी के कारखाना में और दरभंगा और मुजफ्फरपुर के दर्जन से ऊपर चीनी-कारखानों में इसका व्यवहार किया जायगा। फारबिसगंज, सहरसा, बेगूसराय, मधेपुर, पूर्णिया, सीतामढ़ी, निर्मली आदि शहर भी घरेलू और औद्योगिक कार्यों के लिये बिजली काम में लावेंगे। संभव है कि संथाल परगने और पूर्णिया में उत्पन्न होनेवाली सवाइ घास से कागज बनाने का एक

बिजली से चलनेवाला कारखाना कुरसेलाघाट के पास या कटिहार में खोला जाय। सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि नेपाल की राजधानी काठमाण्डू के पास से कलकत्ते तक जाने का एक बढ़िया जलमार्ग मिल जायगा। बाँध का दृश्य भ्रमणकारियों के लिए काफी रमणीक होगा। बाँध मछलियों का एक सुन्दर खजाना होगा। जनता को पैसे भी मिलेंगे और अन्न-संकट के समय वह उसपर निर्भर भी कर सकेगी। जिस दिन यह बाँध तैयार हो जायगा उस दिन से बिहार का अभिशाप कोसी 'बिहार का वरदान' हो जायगी।

अभ्यास

१—कोसी सबसे बड़ी आफत क्यों है ?

२—कोसी कहाँ से निकलती है और उसकी सहायक नदियाँ कौन-कौन हैं ?

३—कोसी का बाँध कैसा होगा और उससे क्या-क्या लाभ है ?

———

पुनर्निर्माण

[श्री आरसी प्रसाद सिंह]

शेष है दिनमान,

जीवन का पुनर्निर्माण कर ।
ध्वस्त जो कुछ हो गया है,
वह कहीं क्या खो गया है,
अंकुरित हो जायँगे फिर--
वीज निश्चित बो गया है ।

शोक मत कर; आ,

मधुर आनन्द-रस का पान कर ! ॥१॥
तू, अरे, सकता न कर क्या ?
स्वर नहीं तेरा अमर क्या ?
हो रहा भयभीत सचमुच,
देख यह जीवन-समर क्या ?

सामने बढ़ वीर, अपनी
शक्ति की पहचान कर ! ॥२॥

तू परम पुरुषार्थमय है!
अन्त में तेरी विजय है!
एक कर में सृजन तेरे,
दूसरे कर में प्रलय है!
दुःख मन की कल्पना है,
नित्य सुख का गान कर ॥३॥

अभ्यास

१—इस कविता का अर्थ लिखो।

२—निम्नलिखित शब्दों के अलग-अलग वाक्य बनाओ—

ध्वस्त, अंकुरित, सृजन, कल्पना, पुरुषार्थमय।

———

त्याग और दान नं० २ २

[आचार्य विनोबा भावे]

एक आदमी ने भलेपन से पैसा कमाया। उससे वह अपनी गृहस्थी सुख-चैन से चलाता है। बाल-बच्चों का उसे मोह है, देह की ममता है। स्वभावतः ही पैसे पर उसका जोर है। दिवाली नजदीक आते ही वह अपना तलपट सावधानी से बनाता है। यह देखकर कि सब मिलकर खर्च जमा के अन्दर हैं और उससे पूँजी कुछ बढ़ी ही है, उसे खुशी होती है। बड़े ठाट से और उतने ही भक्तिभाव से वह लक्ष्मी जी की पूजा करता है। उसे द्रव्य का लोभ है, फिर भी नाम का कहिये या परोपकार का कहिये, उसे खासा खयाल है। उसे ऐसा विश्वास है कि दान-धर्म के लिये—इसी में देश को भी लीजिये—खर्च किया हुआ धन ब्याज समेत वापस मिल जाता है। इसलिये इस काम में वह खुले हाथों खर्च करता है। अपने आस-पास गरीबों को इसका इस तरह बड़ा सहारा लगता है जिस तरह छोटे-बच्चों को अपनी माँ का।

दूसरे एक आदमी ने इसी तरह सचाई से पैसा कमाया था। लेकिन इसमें उसे संतोष न होता था। उसने एक बार बाग के लिये कुआँ खुदवाया। कुआँ बहुत गहरा था। उसमें से थोड़ी मिट्टी, कुछ छर्रा और बहुत से पत्थर निकले। कुआँ जितना गहरा गया, इन चीजों का ढेर उतना ही ऊँचा लग गया। मन-ही-मन सोचने लगा, "मेरी तिजोरी में पैसे का ऐसा टीला लगा हुआ है, उसी अनुपात से किसी और जगह कोई गडढा तो नहीं पड़ गया होगा!" इतने विचार से ही वह हड़बड़ाकर सचेत हो गया। वह कुआँ तो उसका गुरु बन गया। कुएँ से उसे जो कसौटी मिली उसपर उसने अपनी सचाई को घिसकर देखा, वह खरी नही उतरती, ऐसा ही उसे दिखाई दिया। इस विचार ने उसपर अपना प्रभुत्व जमा लिया कि 'व्यापारिक सचाई' की रक्षा मैंने भले ही की हो, फिर भी इस बालू की बुनयादी पर मेरा मकान कबतक टिक सकेगा? अंत में पत्थर, मिट्टी और मानिक-मोतियों में उसे कोई फर्क नहीं दिखाई दिया। यह सोचकर कि, फिजूल का कूड़ा-कचरा भरकर रखने से क्या लाभ? वह एक दिन सबेरे उठा और अपनी सारी संपत्ति गधे पर लादकर गंगा किनारे ले गया। "माँ मेरा पाप धो डाल!" इतना कहकर उसने वह कमाई गंगा-माता के अंचल में उड़ेल दी और बेचारा स्नान करके मुक्त हुआ। उससे कोई-कोई पूछते हैं, "दान ही क्यों न कर

दिया ?" वह जवाब देता है, "दान करते समय 'पात्र' तो देखना पड़ता है। अपात्र को दान देने से धर्म के बदले अधम होने का डर जो रहता है। मुझे अनायास गंगा का 'पात्र' मिल गया, उसमें मैंने दान कर दिया।" इससे भी संक्षेप में वह इतना ही कहता है, "कूड़े-कचरे का भी कहीं दान किया जाता है ?" उसका अंतिम उत्तर है "मौन"। इस तरह उसके संपत्ति-त्याग से उसके सब सगों ने उसका परित्याग कर दिया।

पहली मिसाल दान की है, दूसरी त्याग की। आज के जमाने में पहली मिसाल जिस तरह दिल पर जमती है, उस तरह दूसरी नहीं। लेकिन यह हमारी कमजोरी है। इसलिये शास्त्रकारों ने भी दान की महिमा कलियुग के लिये कही है। दुर्बल हृदय द्रव्य के लोभ को पूरी तरह नहीं छोड़ सकता। इसलिये उसके मन की उड़ान अधिक-से-अधिक दान तक ही हो सकती है। त्याग तक उसकी पहुँच नहीं हो सकती। लोभी मन को तो त्याग तक का नाम सुनते ही जाने कैसा लगता है। इसलिये उसके सामने शास्त्रकारों ने दान के ही गुण गाये हैं।

त्याग तो बिलकुल जड़ पर ही आघात करनेवाला है। दान ऊपर-ही-ऊपर से कोंपले खोंटने जैसा है। त्याग पीने की दवा है; दान सिर पर लगाने की सोंठ है। त्याग में अन्याय के प्रति चिढ़
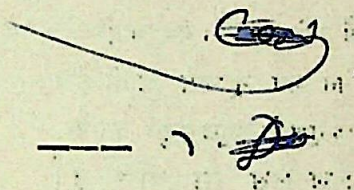
है; दान में नाम का लिहाज है। त्याग से पाप का मूलधन चुकता है, और दान से पाप का व्याज। त्याग का स्वभाव दयालु है, दान का ममतामय। धर्म दोनों ही से पूर्ण है। त्याग का निवास धर्म के शिखर पर है, दान का उसकी तलहटी में।

पुराने जमाने में आदमी और घोड़ा अलग-अलग रहते थे। कोई किसी के अधीन न था। एक बार आदमी को एक जल्दी का काम आ पड़ा। उसने थोड़ी देर के लिये घोड़े से उसकी पीठ किराये पर माँगी। घोड़े ने भी पड़ोसी के धर्म को सोचकर आदमी का कहना स्वीकार कर लिया। आदमी ने कहा, "लेकिन तेरी पीठ पर मैं यों नहीं बैठ सकता। तू लगाम लगाने देगा तभी मैं बैठ सकूँगा।" लगाम लगाकर मनुष्य उसपर सवार हो गया और घोड़े ने भी थोड़े समय में काम बजा दिया। अब करार के मुताबिक घोड़े की पीठ खाली करनी चाहिये थी, पर आदमी से लोभ न छूटता था। वह कहता है, देख भाई, तेरी यह पीठ मुझसे छोड़ी नहीं जाती, इसलिये इतनी बात तू माफ कर। हां, तूने मेरी खिदमत की है (और आगे भी करेगा) इसे मैं कभी न भूलूँगा।" इसके बदले मैं तेरी खिदमत करूँगा, तेरे लिये घुड़साल बनाऊँगा, खरहरा करूँगा, जो कहेगा वह करूँगा; पर छोड़ने की बात मुझसे न कहना।" घोड़ा बेचारा कर ही क्या सकता था? जोर से हिनहिनाकर उसने अपनी

फरियाद भगवान् के दरबार में पेश की। घोड़ा त्याग चाहता था, आदमी दान की बातें कर रहा था। भला आदमी, कम-से-कम अपना यह करार तो पूरा होने दे।

अभ्यास

१—दूसरे आदमी ने सचाई से कमाये धन को गंगा में क्यों फेंक दिया?

२—त्याग और दान में क्या भेद समझते हो?

हरियाली

[श्री स्वर्णसहोदर]

मैं तरु-तृण की हरियाली हूँ,
मैं अनुपमेय छवि वाली हूँ।

मैं अभिनव अति नव आती हूँ,
नित नव नूतनता लाती हूँ।
तरु-तृण के मृदुल-मृदुल तन पर,
नवल-नवल छा जाती हूँ।
छिटकाती छटा निराली हूँ,
मैं तरु-तृण की हरियाली हूँ ॥१॥

तरु-तृण का साज सजाती हूँ,
चेतना नई उपजाती हूँ।
मैं उसकी नस-नस में उनका,
जीवन बन कर भर जाती हूँ।
मैं तरु जीवन की डाली हूँ,
मैं तरु-तृण की हरियाली हूँ ॥२॥

मैं पत्तों में मुसकाती हूँ,
शाखाओं में इठलाती हूँ,
मैं तरु-तृण पर आपाद-शीर्ष,

मैं स्वयं एक खुशहाली हूँ,
मैं तरु-तृण की रखवाली हूँ ॥३॥

मुझसे रंजित वन सब उपवन,
मुझसे शोभित तरु-तरु तृण-तृण।
मैं मुक्त-हस्त माधुर्य दान,
वितरण करती इनको क्षण-क्षण।

मैं सुन्दर सत्तावाली हूँ,
मैं तरु-तृण की हरियाली हूँ ॥४॥

मैं करूँ नयन शीतल-शीतल,
मैं भरूँ शान्ति ही तल-ही-तल।
होता था मेरा ज्योति-किरण,
उत्फुल्ल, उल्लसित जगती-तल।

सुख-शान्ति लुटाने वाली हूँ,
मैं तरु-तृण की हरियाली हूँ ॥५॥

अभ्यास

१—पर्यायवाची शब्द बताओ—

पाद, जगती, तृण, शाखा, हस्त ।

२—हरियाली और पतझड़ की तुलना करो ।

३—चौथे पद का अर्थ बताओ ।

जीवन-संग्राम और छोटे प्राणी

[श्री लज्जाशंकर झा]

जीवन-संग्राम की दृष्टि से छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों के जीवन और उनकी शरीर-रचना के देखने से हमें केवल आनन्द ही नहीं होता, वरन् उसमें ईश्वर की अद्भुत लीला को देखकर उसके प्रति असीम भक्ति और श्रद्धा भी उत्पन्न होती है। पहली बात जो हमें मालूम होती है, यह कि प्राणियों की शरीर-रचना उनके निर्दिष्ट जीवन के अनुकूल ही की गई है। जिस प्राणी में कम क्षमता है उसका जीवन इस संसार में कदापि सुखमय नहीं हो सकता। क्षमता कई प्रकार की होती है, अर्थात् मानसिक बल, शारीरिक बल, परस्पर सहायता देने की शक्ति जलवायु-सम्बन्धी परिवर्त्तन के सहने की शक्ति, अघात सहने की शक्ति और उपयोगिता।

कीड़ों-मकोड़ों का अवलोकन करने से हमें मालूम होता है कि इनमें भोजन प्राप्त करने और आत्म-रक्षा करने के विचित्र ढंग हैं। खटमल का शरीर गोल और चिपटा इसलिये होता है

कि काम पड़ने पर वह दिवार और पाटियों के बीच में बिना कठिनाई के छिप सके। मनुष्य ज्योंही खाट पर लेटा कि ये अपने संकीर्ण कन्दरों से निकलकर उसका रक्त चूसने लगे; पर ज्योंही वह बैठकर उनकी खोज करने लगा त्योंही वे अपने-अपने स्थानों में जा छिपे। चपटा शरीर होने के कारण वे मनुष्य से तो इस प्रकार छिप जाते हैं और शरीर से दुर्गन्ध निकलने के कारण वे हिंसक प्राणियों से भी बच जाते हैं।

संकीर्ण स्थानों में छिपनेवाले कीड़ों के शरीर खटमल के ही समान चपटे रहते हैं। एक प्रकार के कीड़े के शरीर से ऐसा खराब तेल निकलता है कि उसके लग जाने से फफोले पड़ जाते हैं। उनके तेल के भय से उनको खाने की इच्छा कोई भी हिंसक प्राणी नहीं करता। एक दूसरे वर्ग का बीटिल या बरैला होता है जो शत्रु के पास आते ही बन्दूक-सी छोड़ता है, जिसका धुआँ शत्रु की आँखों में घुसकर उसे विकल और बेकाम कर देता है। इतने में वह बीटिल भाग जाती है।

अनेक जीव किसी-न-किसी प्रकार हिंसक जीवों से अपनी रक्षा करने में समर्थ हो जाते हैं, पर इस पाठ में केवल; उन कीड़ों के वर्णन करने का प्रयत्न किया जायगा, जो स्वाँग रच-कर अथवा अभिनय करने शत्रुओं की आखों में धूल झोंकते और अपना काम चलाते हैं।

अक्सर यह देखने में आया होगा कि कंबल नाम का कीड़ा, किसी का हाथ लगते ही, अपने शरीर को गुड़-मुड़ी कर गोल रूप बन जाता है। इसी प्रकार जिंजाई नामक लाल कीड़ा, जो बरसात के आरम्भ में दिखाई देता है, भय का संकेत पाते ही गुड़-मुड़ी हो निश्चल हो जाता है। इसका अभिप्राय क्या है ? एक तो यह कि उस रूप में शरीर के कोमल अंग नीचे होकर हानि से बचते हैं और दूसरे यह कि उसे निश्चल देख शत्रु यह समझकर कि वह मर गया है, उसका पीछा छोड़ देता है।

एक दालनुमा कीड़ा होता है। उसकी चालाकी और भी तारीफ करने के लायक है। जब वह किसी पत्ते या डाल पर बैठा हो उस समय कोई उँगली भर उठा दे, बस वह तुरत सिकुड़ कर और दाल का रूप धारण करके इस सफाई से नीचे गिर जाता है, मानों कोई दाना टपक पड़ा हो। धरती पर गिरते ही वह घास-पात का आश्रय ले इस धूर्त्तता से छिप जाता है कि उसका पता लगाना प्रायः असम्भव ही हो जाता है। ये तीनों प्रकार के कीड़े मक्कारी नहीं करते तो क्या करते हैं !

ऋतु के अनुसार, अपने रंग बदलकर, घास-तृण आदि में छिप जानेवाले कीड़ों को बहुरूपिये कीड़े कह सकते हैं। गिरगिट में यह शक्ति होती है कि जिस स्थान में जा बैठता है उस स्थान के रंग की झलक अपने शरीर में ले आता है !

यद्यपि इतनी जल्दी अपने रंग में परिवर्त्तन करने की शक्ति टिड्डे में नहीं है, तथापि वह भी ऋतु के अनुसार भेष बदल लेता है। बरसात में जब चारों ओर हरियाली रहती है तब उसका रंग भी हरा रहता है। कार्तिक मास में वह पकी घास का रंग लेने लगता है, और जब चैत-बैशाख में हरियाली तथा घास बिलकुल नहीं रहती तब वह बहुरूपिया मटिया रंग का हो जाता है। इस प्रकार रंग बदलने से उसको यह फायदा होता है कि वह अपने को बिना प्रयास छिपा सकता है और अपनी जाति के शत्रुओं से बच सकता है। उसके पंख भी इस प्रकार के बने रहते हैं मानों दो हरी कोपलें डाल से हाल में ही निकली हों और अभी तक कड़ी होकर फैली न हों। जब वह वर्षा-ऋतु में डाल पर बैठा रहता है, उस समय उसे पहचान लेना टेढ़ा काम होता है। दूर से देखने में तो धोखा होता ही है।

एक समय हमें हरे रंग की एक इल्ली नींबू के पेड़ के एक पत्ते पर इस खूबी से बैठी हुई नजर आई कि एक गज की दूरी से ऐसा मालूम होता था कि एक छोटा-सा नींबू डाल से निकलकर पत्ते से सटा हुआ है। हम कई बार उस पेड़ के पास से निकले और प्रत्येक समय हमें यही भ्रम हुआ, उस पेड़ के पत्तों को कोई प्राणी आकर खा जाया करता था, इसलिये थोड़ी देर के पीछे जब उस पेड़ की बारीकी से तलाश की गई, तब मालूम हुआ

कि वह नींबू नहीं बल्कि इल्ली है, जो इस प्रकार एक पत्ते से दूसरे पत्ते पर बैठ उन्हें चाट जाती है। जब उसे पकड़ कर छुटाने की चेष्टा की गई तब वह पत्ते से ऐसी चिपक गई मानो वह उसीका एक भाग हो।

इल्ली को अभिनय में इतना प्रवीण देख हमें बहुत विस्मय हुआ; पर उसके साथ यह विचार भी आया कि यदि वह अभिनय में इतनी कुशल न होती तो, इतने दिनों तक सब लोगों की आँखों में धूल झोंक कर अपना पेट क्योंकर भरती? तलाश करने पर ज्ञात हुआ कि वह नारंगी के पेड़ पर बैठनेवाली तितली जाति की एक इल्ली थी। नारंगी चूँकि नींबू की ही जाति का एक पेड़ है, इसी कारण वह वहाँ पहुँच गई।

एक दूसरे दिन हमें इससे भी बढ़कर और एक विस्मयजनक दृश्य देखने को मिला। एक पेड़ की डाल में कलम की हुई और कुछ सूखी हुई एक टहनी-सी हमें दिखाई दी। उसे देख हमारे मन में यह प्रश्न उठा कि वह टहनी क्यों सूख गई। इसका अनुसंधान करने के लिये ज्योंही हमने उस टहनी को हिलाना चाहा त्योंही एक कीड़ा पंख फैला उसपर से उड़ गया। जब तक वह कीड़ा पेड़ पर बैठा रहा तब तक हमें यही प्रतीत होता रहा कि वह टहनी है, उसका रंग बिलकुल उस पेड़ की डाली से मेल खाता था और उसके बैठने का ढंग भी ऐसा था कि वह

सूखी कलम की हुई कटी टहनी के डंठल के समान ही दीखता था। वैसा प्राणी हमें अभी तक देखने को नहीं मिला। धन्य है उसके रूप तथा अभिनय को जो देखनेवालों को इतना भ्रम में डाल देते हैं।

इसी प्रकार कई अक्षुभ प्राणियों के रंग उनके भक्ष्य के रंगों से मिल जाते हैं और जब वे उनपर जा बैठते हैं तब सौ में ९० मनुष्य उन्हें पहचानने में असमर्थ रहते हैं। कई तितलियाँ और फतिंगे अदृश्य होने में बड़े निपुण होते हैं। एक प्रकार की तितली की कमर बाल के समान पतली होती है और वह बहुधा कटीली झाड़ियों पर बैठती है। फिर बैठती भी इस चतुराई से कि धर डाल में मिलकर पंख पत्तेनुमा हो जाते हैं। भूरे रंग के कई फतिंगे पेड़ों की पींड़ पर अथवा काठ की दरारें और उसके गड्ढों में निश्चल बैठकर उनके रंग में छिप जाते हैं। पेड़ों की खुरदरी धरती पर वृहद्दर्शकताल (मेग्नीफाइंग ग्लास) लगाने से कई ऐसे घुन मिलेंगे जो छाल के रंग से अपना रंग मिलाकर अदृश्य से होकर उसे खाते रहते हैं।

एक नीति की पुस्तक में एक गधे की कहानी लिखी है। उसे कहीं व्याघ्र का चमड़ा मिल गया था और वह उसे ओढ़ कर वन के पशुओं को डराया करता था। इसी तरह कार्तिक में एक प्रकार की मक्खी आती है, जिसका स्वरूप मधुमक्षिका